संघ
संघ परिवार
एवं
त्रिविध पथ्य

दत्तोपन्त ठेंगड़ी

आकाशवाणी प्रकाशन प्रा० (लि०)
नई रेल्वे रोड, जालन्धर-144001. (पंजाब)

मूल्य : 7-00 रुपये

दो शब्द

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना सन् 1925 में हुई। संघ संस्थापक परम पूजनीय डॉ० केशव बलिराम हैडगेवार जी ने हिन्दू राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति की संकल्पना अपने मस्तिष्क में कर रखी थी। परन्तु सर्वप्रथम उन्होंने हिन्दू समाज के संगठन पर बल दिया। उनके मस्तिष्क की संकल्पनाएं ही धीरे-धीरे विकसित होती गईं। आज जो संघ का एक विराट रूप दिखाई दे रहा है यह उसी का परिणाम है।

संघ से प्रेरणा प्राप्त कर स्वयंसेवक समाज के विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। उन्होंने विभिन्न संस्थाओं को प्रारम्भ किया है। संघ की स्थापना से आज तक इतना समय बीत जाने पर भी संघ के विषय में एवं स्वयंसेवकों के द्वारा निर्मित संस्थाओं के विषय में जनमानस में भ्रांतियां हैं। उन्हीं भ्रांतियों के निवारण हेतु तथा अन्य क्षेत्रों में कार्य कर रहे स्वयंसेवकों के मार्गदर्शन हेतु देश के प्रसिद्ध विचारक माननीय दत्तोपन्त ठेंगड़ी जी ने अपने विचार रखे हैं।

पंजाब के संघ कार्यकर्ताओं एवं संघ परिवार के कार्यकर्ताओं का एक शिविर पठानकोट में 21, 22 मार्च, 1992 को हुआ। उसी समय माननीय ठेंगड़ी जी ने ये विचार रखे।

संघ एवं संघ परिवार के कार्यकर्त्ता त्रिविध पथ्यों को ध्यान में रखते हुए कार्य करेंगे तो निश्चित ही यशस्वी होंगे।

—प्रकाशक

संघ, परिवार एवं त्रिविधपथ्य

अच्छी बात को बार बार कहना पड़ता है :

1925 से संघ का कार्य चलता आ रहा है और पंजाब में भी कई दशकों से संघ का कार्य चल रहा है। संघ के पुराने स्वयं सेवक पूरी तरह से संघ को जानते हैं। इसी कारण संघ के विषय में कुछ भी बोलने की आवश्यकता तो नहीं होनी चाहिए लेकिन बार-बार बोलना पड़ता है इसका कारण है। समर्थ रामदास ने कहा है कि एक बार कोई चीज समझाने के बाद भी बार बार समझाने की आवश्यकता पड़ती है । उन्होंने मराठी में कहा है "कर्म केले चिकरसवे, ध्यानधरेले चिनरावे, देवरेलेचंदेवराले सुध निरुपणा" एक बार जो काम किया बार बार वही करना पड़ता है एक बार ध्यान किया बार बार वही ध्यान करना पड़ता है। एक बार अच्छी तरह बोलने के बाद भी बार बार बोलना पड़ता है। कारण यह है कि एक बार बोलने के पश्चात जो मनुष्य की धारणा हो जाती है, उसका समाधान हो जाता है। बीच में वह परिस्थितियों के कारण बिगड़ जाता है और बिगड़ जाने के कारण दोबारा उसी बात को दोहराना आवश्यक हो जाता है। यह स्वाभाविक है । भारत के वायुमण्डल में कई जोरदार प्रवाह आये हैं जिसके कारण अग्नि पर राख आई है लोहे पर जंग चढ़ा है बाहर के कीटाणु अपने मन में प्रवेश हुए

हैं और इसलिए मन में एक बार एक बात अच्छी तरह से आ गई उसमें भी कुछ गड़बड़ निर्माण होती है। हमारा स्वयंसेवक बाहर के वायुमण्डल में स्वाभाविक रूप से आता है इसके कारण एक बात जो मन में ठीक बैठ गई, वह बिगड़ जाती है इसलिए बार बार बोलना पड़ता है इसका अनुभव मुझे है।

उस समय का पंजाब या इस समय के हरियाणा के एक शहर में संघ की सायं शाखा में गया तो मुख्य शिक्षम ने कहा कि बौद्धिक के लिए सबको पंक्ति में बिठा दूं। मैंने कहा कि हम जहां जाते हैं वहां बौद्धिक लेना जरूरी है ऐसी तो बात नहीं है। चलो जरा स्वयसेवको से बातचीत करेंगे। प्रार्थना के पहले अलग अलग गण अलग अलग बैठे थे। तो जब मैं बाल स्वयंसेवकों के गण में बैठा 32 संख्या थी। अब सरकल में सब बैठे थे प्रश्न पूछा संघ का पूरा नाम क्या है और जिसको उत्तर याद है केवल हाथ ऊपर उठाए तो कई लोगों ने हाथ उठाया हमने पूछा क्या नाम है ? राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। फिर पूछा कि यह कब शुरू हुआ इसका भी ठीक उत्तर आया ? फिर पूछा कि यह किसने शुरू किया। इस पर भी पांच छः हाथ उठे, एक से पूछा तो उसने कहा डाक्टर केशव राव बली राम हेडगेवार। दूसरे से पूछा उसने कहा डाक्टर केशवराव बली राम हेडगेवार। फिर तीन चार लड़के जो ऐसे हाथ खड़े किये थे उनमें से एक से पूछा। खड़ा होकर बोला, डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी और एक को खड़ा किया बोला डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी। अब क्या था कि चुनाव पहले हुए थे। चुनावों में धुआंधार प्रचार हुआ होगा श्यामा प्रसाद मुखर्जी का। यह बात स्वयंसेवकों ने सुन ली। तो जब श्यामा प्रशाद मुखर्जी का नाम आया तो मैंने कहा

कि यह तो मुश्किल हो गई। अभी तक जो प्रश्न पूछे उनका उत्तर तो एक ही आया अब दो उत्तर आ गए। कौन सा सही समझना चाहिए। इस पर एक ने हाथ उठाया। हमने उसे खड़ा किया बोला इसमें कठिनाई क्या है। वोट ले लो। तो वह बाल किशोर का मामला था हमने कहा कि देखा जाए क्या होता है। हमने कहा कि वोट ले लेते हैं बताओ तो हेडगेवार वाले कितने हैं और मुखर्जी वाले कितने ? तो उनमें से 8 लोग तटस्थ रहे और 8 लोगों ने हेडगेवार को संस्थापक बताया और 16 लोगों ने डा. मुखर्जी को संस्थापक बताया। मैं आनन्द ले रहा था। तो फिर मैंने ऐसे ही कहा कि अब कैसे तय करना ? तो वह लड़का फिर खड़ा हो गया और बोला कठिनाई क्या है मैजोरिटी जिसकी तरफ है वह है। तो मैजोरिटी तो डा. मुखर्जी की तरफ गई थी। मेरे कहने का मतलब है कि बाल किशोरों का मैंने उदाहरण लिया हरेक के मन पर बाहर के वायुमण्डल का कुछ न कुछ प्रभाव होता है और इसलिए बार बार बौद्धिक लेना पड़ता है। नहीं तो एक बार 1925 में बौद्धिक सुनने के बाद फिर से बौद्धिक वर्ग की आवश्यकता ही न होती।

स्वराज्य तात्कालिक लक्ष्य :

प्रारम्भ से ही प्रारम्भ करें तो अच्छा है। एक एक बात संक्षेप में लें। अपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना 1925 में विजयदशमी के पुण्य अवसर पर हुई। परम पूजनीय डा. केशवराव बली राम हेड़गेवार ने स्थापना की। हम सब जानते हैं कि परम पूजनीय डा० जी जन्मजात देश भक्त थे उनके समय जितने भी सार्वजनिक कार्य, संस्थाएँ, संगठन,

आन्दोलन चल रहे थे, उन सभी में उन्होंने हिस्सा लिया था। इसके कारण सभी देशी और विदेशी विचारधाराओं से अच्छी तरह परिचित थे। क्रान्तिकारियों में बंगाल में कुछ वर्ष रहे थे। सभी प्रकार की देश की समस्याओं के कार्य में हिस्सा लिया। वैसे तो संघ की स्थापना 1925 में हुई। किन्तु डा. जी की मृत्यु के पश्चात् बंगाल के क्रान्तिकारी अनुशीलन समिति के वरिष्ठ नेता त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती महाराज ने एक वक्तव्य दिया था। उसमें उन्होंने कहा था कि मालूम होता है कि केशवराव के मन में संघ के जैसा कुछ न कुछ कार्य शुरू करना चाहिए यह कल्पना बहुत पहले होगी।

क्योंकि जब 1916 में केशवराव मेरे पास आये थे उस समय उन्होंने मुझ से कहा था कि महाराज जी सभी नेता जो कह रहे हैं और हम लोग भी स्वराज्य के लिए प्रयास कर रहे हैं, यह तो ठीक ही है। 'स्वराज्य' यह हमारा तात्कालिक लक्ष्य होना ही चाहिए कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र यह स्वीकार नहीं करेगा कि दूसरों की गुलामी में रहे। गुलामी की शृंखला तोड़ना, स्वराज्य प्राप्त करना यह हमारा तात्कालिक लक्ष्य होना ही चाहिए इसमें तो दो राय नहीं है। लेकिन कई राजनेता जो कह रहे हैं कि स्वराज्य यह सभी सवालों का जवाब है, सभी समस्याओं की सुलझन है, एक बार स्वराज्य हाथ में आ जाएगा तो हमारी सारी समस्यायें सुलझ जायेंगी। ऐसा राजनेता जो कहते हैं, मुझे वह बात नहीं जंच रही है। स्वराज्य प्राप्त होना ही चाहिए लेकिन जैसे स्वराज्य अलादीन का दिया है। माना जाता है जिसके हाथ में अलादीन का दिया है उसकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वैसे एक बार 'स्वराज्य'—अलादीन का दिया हाथ में आ जाए, हमारी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाएँगी। ऐसा जो प्रचार हमारे राज नेताओं द्वारा हो रहा है मुझे वह ठीक

नहीं लगता। मुझे ऐसा लगता है कि वास्तव में राष्ट्र का उत्कर्ष होना है, तो उसका आधार सर्व-साधारण नागरिक में राष्ट्रीय चेतना का स्तर सही रहे, हरेक व्यक्ति राष्ट्र के साथ एकात्मकता का अनुभव करे और इस तरह का संस्कार हर व्यक्ति के हृदय पर अंकित करना इसी आधार पर राष्ट्र खड़ा हो सकता है। यह अधिक बुनियादी बात है। बेसिक है, मौलिक है, ऐसा मुझे लगता है।

संघ संस्थापन—गहन चिंतन का परिणाम

1916 में यह बात डा. जी ने त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती महाराज जी को कही थी। इधर सभी कामों में हिस्सा ले रहे थे। प्रत्यक्ष अनुभव किताबों को पढ़कर नहीं विभिन्न कार्यों, विभिन्न आन्दोलनों का प्रत्यक्ष अनुभव, उधर विदेशी देशी विचारधाराओं का अध्ययन लेकिन यह सारा करते हुए मन में कुछ बेचैनी थी कि सभी बातों में कुछ त्रुटि है। वह जब तक पूरी नहीं होती तब तक सभी बातें व्यर्थ हैं। ऐसा लगा तो गहन चिंतन के बाद राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का निर्माण हुआ। संघ का निर्माण होने के पूर्व ही सभी तरह से जिसे कहते हैं कि Pros and cons सभी तरह से दक्षिण पक्ष, उत्तर पक्ष, पूर्व पक्ष, सब तरह से गहन विचार करने के पश्चात् संघ का निर्माण हुआ। आजकल कहीं कोई घटना हो जाती है अखबारों में पढ़ लेते हैं। आवेश आ जाता है तो संस्था का निर्माण कर देते हैं। ऐसी बात नहीं थी। पूरा अध्ययन, पूरा अनुभव और गहन चिन्तन इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का निर्माण हुआ और यह बहुत पूर्व दृष्टि से जिसे Long range vision कहा जाता है, हुआ।

प्रत्येक बात ध्यान में रखकर विचार करते हुए एक एक बात इसमें जोड़ी गई। अब अन्य संस्थाओं का निर्माण और संघ का

निर्माण इसमें बहुत अन्तर है। आपने प.प. डा० जी की जीवनी में भी पढ़ा होगा, बौद्धिक वर्ग में भी सुना होगा, अधिक बताने की जरूरत नहीं फिर भी एक बात सब के ध्यान में होगी कि अन्य संस्थाओं की तरह संघ का निर्माण नहीं हुआ। सामान्यतः संस्था का निर्माण इस प्रकार से होता है कि बैठक हो जाती है, प्रस्ताव पारित होता है नाम दिया जाता है, संस्था का संविधान बन जाता है, अखिल भारतीय पदाधिकारी तय हो जाते हैं। कागज़, पैंसिल, पैन का काम एकदम शुरू हो जाता है। ऐसा कुछ आर. एस. एस. के बारे में नहीं हुआ। यह सब कुछ काफी देर बाद शुरू हुआ। नाम भी कुछ दिनों बाद आया और प. प. डा० जी constitution (संविधान) के बारे और बाकी बातों के बारे में कहते थे कि सफेद कागज पर काली स्याही का प्रयोग न करते हुए भी हिन्दु समाज का अभेद, अजेय संगठन मैं खड़ा कर सकूँ यह मेरी अकांक्षा है। इसलिए कहा जाता था कि कागज पैंसिल के बगैर यह संगठन खड़ा हुआ। इसकी सारी विशेषताएँ बताने की आवश्यकता नहीं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि long range माने लम्बा अन्तर और पूरा विचार लेकर संगठन निर्माण हुआ।

प. प. डा० जी के मन में सब बातें थीं लेकिन ऐसा नहीं कि जैसे अन्य संस्था के लोग प्रैस कांफ्रेंस लेते हैं और प्रैस कांफ्रेंस लेकर दुनिया के अन्त तक यह संस्था क्या करने वाली है यह इसका सारा चिट्ठा प्रैस को दे देते हैं। यहां कुछ भी नहीं बताया गया। पहले लोग आते थे। खेलते थे, सूर्य नमस्कार होता था, दंड करते थे, समता भी होती थी। धीरे-धीरे एक-एक बात आई। गुरू-दक्षिणा भी पहले साल शुरू नहीं हुई। संघ शिक्षा वर्ग पहले साल नहीं शुरू हुआ। लेकिन इस प्रकार की कई बातें उनके मन में थीं। आज भी हम

जो देख रहे हैं वह सारा विचार उन्होंने किया था। इसीलिए जो कुछ भी आज का दृश्य है उनके विचारों का progressive unfoldment है। progressive का मतलब है कि धीरे-धीरे होने वाला और unfoldment का मतलब है प्रकटीकरण, उत्तरोत्तर प्रकटीकरण। किन्तु progressive unfoldment उस चीज़ की है जो vision डा० जी का था, उसी कल्पना का यह उत्तरोत्तर प्रकटीकरण है।

साध्य साधन

हमारे सामने उन्होंने साध्य साधन रखा। साध्य क्या रखा? कहा—परम वैभवम् नेतुम एततस्वराष्ट्रम्। इसी हिन्दु राष्ट्र को परम वैभव तक ले जाना, उस के लिए साधन बताया, विधायास्य धर्मस्य संरक्षणम्, इसी धर्म का संरक्षण करते हुए यह साधन, (हिन्दु राष्ट्र का परम वैभव याने साध्य) और धर्म के संरक्षण का आधार विजेत्रीचना संहता कार्य शक्ति यानि हमारी हिन्दुओं की विजय शालिनी कार्यशक्ति माने हिन्दु संगठन इस आधार पर धर्म का संरक्षण, इसके फलस्वरूप हिन्दु राष्ट्र का परम वैभव, यह साध्य साधन हमारे सामने रखा। एक-एक हिन्दु को राष्ट्र के साथ एकात्मकता का, अंगांगी भाव का संस्कार देना। मैं अकेला नहीं पृथक नहीं, मैं सम्पूर्ण राष्ट्र शरीर का एक अवयव मात्र हूँ। एक एक अवयव का सम्पूर्ण शरीर के साथ अविभाजित सम्बन्ध हुआ करता है वैसा ही मेरा हिन्दु राष्ट्र के साथ सम्पूर्ण सम्बन्ध है। यह संस्कार हरेक हिन्दु के हृदय पर अंकित करना, ऐसे हिन्दुओं को उन्होंने स्वयंसेवकों की संज्ञा दी और ऐसे अनुशासित स्वयंसेवकों का देश व्यापी संगठन खड़ा करना। इस आधारभूत कार्य के लिए उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ संगठन का कार्य करेगा।

कार्य पद्धति

अब कार्य शुरू हुआ। आप समझ सकते हैं कि उनके मन में जो बात हुआ करती थी वह बताते नहीं थे और कोई समझ भी नहीं सकता था। क्योंकि हर बात समझाने के लिए उपयुक्त समय चाहिए। यही कहा कि खेलना है, शस्त्र वगैरा सीखना है, हम लोग हिन्दु राष्ट्र के परम वैभव का ध्येय रखकर यह कार्य कर रहे हैं, है आधारभुत कार्य हिन्दु संगठन का है। संगठन की दृष्टि से 'शाखा' अभिनव कार्यपद्धति है। हम सब लोग जानते हैं। इस तरह की कार्यपद्धति दिन प्रतिदिन का एकत्रीकरण है। हर दिन सब लोग एक स्थान पर आ जाया करें, कुछ समय इकट्ठे बिताया जाये, कुछ कार्य सामूहिक रूप से करें, सामूहिक कार्यक्रमों के माध्यम से सामूहिक मन का निर्माण होता है। इससे वैज्ञानिक आधार पर हम लोग अपना कुछ समय साथ बितायें इस तरह से सामूहिकता का, समष्टी का, सम्पूर्ण राष्ट्र की एकात्मकता का संस्कार अपने हृदय में स्वाभाविक रूप से अंकित होता है। न पता चलते हुए यह संस्कार हृदय पर अंकित होते हैं और इस तरह से हरेक हिन्दु को संस्कारित करना, ऐसे लोगों का अनुशासन-बद्ध संगठन खड़ा करना और सम्पूर्ण हिन्दु समाज को इस संगठित अवस्था में लाना, यह विचार करते हुए शाखा की कार्य पद्धति शुरू हुई। और अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण समाज को ठीक ढंग से संगठित करने की दृष्टि से एकमात्र सक्षम कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का ही है और कोई कार्यपद्धति नहीं जो सम्पूर्ण समाज की गुणात्मक सतह कायम रखते हुए संगठित कर सकती है। एक ही मार्ग है सम्पूर्ण समाज के अच्छे संगठन का और वह है संघ की कार्य पद्धति 'शाखा'। अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि इस कार्य पद्धति

को लेकर, एक एक व्यक्ति को पकड़ कर उसको संस्कारित करते हुए इस रास्ते पर संगठित करें इसीलिए कहा है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ केवल संगठन करेगा और यह भी कहा कि और कुछ नहीं करेगा। एक वाक्य बहुत चलता था Organisation is our begining & orga. is our end. दादा राव परमार्थ का यह प्रसिद्ध वाक्य है कि संगठन ही हमारे कार्य का प्रारम्भ बिन्दु है, संगठन ही कार्य का अन्त है।

संघ की कार्य पद्धति में एक दृश्य दिखाई देता है। बाल, किशोर, तरुण सब एक पंक्ति में बराबर चल रहे थे, घोष भी था। लोगों का जो दृश्य दिखाई देता है उसी पर वे खुश होते थे। उन्हें प. पू. डाक्टर जी के vision से क्या मतलब ? राष्ट्र, परमवैभव आदि उनके लिए सारे झंझट थे। उस ओर उनका ध्यान भी नहीं जाता था। वे अपने स्वार्थ का विचार करते थे। संघ से लोगों की अपेक्षाएँ होती थीं। संघ को समाज से क्या अपेक्षा है ऐसा वे नहीं सोचते थे। केवल आज ही समाज संघ से अपेक्षाएँ नहीं करता, उन दिनों भी ऐसी ही स्थिति थी। जब घोष तैयार हुआ, पथ संचलन में घोष चलता था। लोगों को अच्छा लगता था। एक बड़े श्रीमान, सम्मानित, अपने से सम्बन्धित और डाक्टर जी के बहुत अच्छे मित्र थे। उनके लड़के की शादी थी। उन्होंने डाक्टर जी को संदेश भेजा कि मेरे लड़के की शादी है। बैंड बजाने के लिए अपना घोष भेज दीजिए। अब डा० जी के लिए प्राण संकट। सहानुभूति रखने वाले और अति निकट मित्र को न कैसे कहा जाए। अब उनको समझाना कि संघ क्या है, हमारी कार्य पद्धति क्या है ? संभव नहीं था। दोस्ती में ऐसे बौद्धिक वर्ग थोड़े दिए जाते हैं। न कहना माने

नराज करना। इतने नज़दीकी व्यक्ति को नाराज कैसे किया जाए ?

मानो यह जो आजकल चलता है कि समाज को संघ से क्या अपेक्षा है। डाक्टर जी ने अपने ढंग से बताया। किस तरह की अपेक्षा हो सकती है। शायद मैंने आपको एक छोटा सा उदाहरण दिया। इसलिए समाज की क्या अपेक्षा है, इसकी बजाए अपनी क्या अपेक्षा है इस पर अधिक विचार करना चाहिए। लोकप्रियता के झंझट में न जाकर समाज की और जनता की अपेक्षा का विचार पहले करना चाहिए। इस दृष्टि से कहा कि कैसी कैसी अपेक्षा है। खैर ये तो कुछ नाजायज अपेक्षा है।

संघ केवल संगठन करेगा

लेकिन कुछ जायज अपेक्षा भी है इसके कारण प्रश्न निर्माण हुआ। अच्छे लोग डा० जी को समझने वाले, वे भी प्रश्न करते थे आपका ध्येय है हिन्दु राष्ट्र को परम वैभव तक ले जाना और आपकी जो कार्य पद्धति है इसका मेल नहीं। आपकी कार्य पद्धति में से आप केवल संगठन खड़ा करने वाले हैं। आप ही कहते हैं। आरगनाईजेशन इज अवर बिगेनिंग एण्ड आरगनाईजेशन इज अवर एंड"। अब हिन्दु राष्ट्र का परम वैभव इससे निर्माण हो सकता है क्या ? उसके लिए तो राष्ट्रजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपयुक्त विचारों का विकास करने की आवश्यकता है। आप कह रहे हैं कि हम कोई कार्य नहीं करेंगे। कोई विचार देना यह हमारा कार्य नहीं है तो हम केवल संगठन करेंगे। दक्ष आरम् करेंगे, इसके अलावा हम कुछ नहीं करेंगे। तो हिन्दु राष्ट्र परम वैभव तक कैसे जायेगा। उस समय सारा समझाना तो कठिन था। परन्तु प. प. डा० जी कहते थे कि भई सारा होगा। पहले

दक्ष आरम् होगा, संगठन खड़ा कीजिए। संगठन खड़ा हो जायेगा तो सब कुछ हो जाएगा।

डा० जी ज्यादा नहीं बोलते थे, लोग उनका सूत्र समझ नहीं पाते थे। वे मराठी में बोलते थे सुनने वाले मराठी थे। लेकिन ये जो बहुत लोगों का ख्याल है कि एक ही भाषा में हम बोलते हैं और सुनने वाला भी वही भाषा बोलने वाला है तो हम जो बोलते हैं वहीं वह समझता है ऐसा गलत ख्याल कई लोगों का है। ऐसा नहीं होता प्रायः बोलने वाले की वेवलेंग्थ तथा श्रोता की वेवलेंग्थ यदि एक नहीं रहेगी तो बोलने वाला कुछ बात बोलता है और समझने वाला कुछ और ही समझ लेता है। डा० जी मराठी बोलते थे और मराठी में ही सुनने वाले सुनते थे लेकिन उनके दिमाग में नहीं आता था। जब डा० जी कहते थे कि भई सब होगा, पहले संगठन होने दीजिए, सारी चीजें होंगी। कोई नहीं समझता था। एक अकोला शहर है। वहां गोपाल राव चितले संघसंचालक हैं। प्रारम्भिक बैठक उनके यहाँ हुई थी। ये गोपाल राव बहुत मुँहफट थे और थोड़ा वाहियात शब्दों में भी समझाने की कला उनको आती थी। डा० जी के लिए यह सम्भव नहीं था लेकिन गोपाल राव वाहियात शब्दों में भी लोगों को समझा सकते थे। उस बैठक में सभी ने कहा कि हम हिन्दु संगठन चाहते हैं। हम कट्टर हिन्दु हैं। लेकिन वह बात हमारे ख्याल में नहीं आ रही है कि आप जो कहते हैं कि हम संगठन छोड़कर कुछ भी करने वाले नहीं तो सारा काम कौन करेगा? केवल दक्ष-आरम् से परम वैभव प्राप्त हो जायेगा? डा० जी ने एक बार कहा दो बार कहा तीन बार कहा कि भई संगठन होने दीजिए, सारी चीजें भी हो जाएँगी। संगठन के कारण समाज शक्तिशाली हो जायेगा, सब चीजें हो जाएँगी। वे समझते ही

नहीं हैं। गोपाल राव ने डा० जी को कहा आप चुप हो जाइये मैं इनको समझाता हूँ। बोले भई इनके कहने का मतलब है कि भई तुम्हारा लड़का है। लड़के के प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य है। पहले उसको खिलाना-पिलाना, अखाड़े में भेजना, कुश्ती दण्ड बैठक करके अच्छा पहलवान बनाना, कालेज में भेजना, उसको डाक्टरी सिखाना और बाद में उसकी शादी करना। पिता का इतना कर्त्तव्य है।

आप कहेंगे कि शादी के बाद क्या प्रोग्राम है। ये बोले कि यह बात पिता जी ने तय करनी है क्या? जब लड़का पहलवान हो जाता है, डाक्टर हो जाता है, शादी कर लेता है तो अपना प्रोग्राम वह तय कर लेता है। इसके लिए पिता को प्रोग्राम बनाने की आवश्यकता है क्या? डा० जी यही कह रहे हैं कि हिन्दु समाज को जवानी में लाइये? हिन्दु समाज जब जवान हो जायेगा तो जवानी के लिए उपयुक्त सारे काम खुद करेगा। इसका अभी प्रोग्राम बनाने की आवश्यकता क्या है? वे समझ गये। जिसको डा० जी नहीं समझा सके उसको चितले जी समझा पाये। ऐसे भी कुछ लोग होते हैं। कहने का मतलब है कि उस समय भी डा० जी जो जो कहते थे सब लोग समझते थे ऐसी कोई बात नहीं। आप जो बात कहते हैं समाज नहीं समझता, उस समय भी डा० जी की बात को समाज नहीं समझता था। चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने सूत्र दिया कि संगठन खड़ा करना इतना ही हमारा काम है। बाकी सब बातें हो जायेंगी।

प. प. गुरु जी को भी पूछा गया कि क्या आप संगठन ही करेंगे और कुछ नहीं करेंगे? उन दिनों में यह शब्द बड़ा चलता था कि 'यूथ एनर्जी इज वींग लॉक्ड अप इन आर. एस. एस.।

युवा शक्ति को बन्द करके रखा है आर. एस. एस. ने। इतनी बड़ी युवा शक्ति आर. एस. एस. के पास है। लेकिन दक्ष-आरम् दक्ष-आरम् इसके अलावा कोई सत्कार्य या अच्छा काम करने के लिए इसका उपयोग नहीं हो रहा। गुरू जी कहते थे ठीक बात है संघ निष्क्रिय है। आपका आरोप सही है। लेकिन हम इतना ही कहना चाहते हैं कि संगठन के अलावा संघ कुछ नहीं करेगा लेकिन हम इस देश में ऐसी परिस्थिति का निर्माण करेंगे कि बगैर संघ के आशीर्वाद के हिन्दुस्तान में कुछ नहीं हो सकेगा। दोनों बातें साथ-साथ। संघ कुछ नहीं करेगा। यह भी है, और हम ऐसी परिस्थितियां निर्माण करेंगे कि संघ के आशीर्वाद के बगैर हिन्दुस्तान में कुछ नहीं हो सकेगा ये भी बात है। दोनों बातें होगी ऐसा वह कहते थे। और वे कहते थे कि संघ कुछ नहीं करेगा संघ के द्वारा सामर्थ्यशाली बना हुआ हिन्दु समाज अपनी सब समस्याओं का समाधान निकालेगा। यह समझना 1925 में जितना कठिन था आज भी उतना ही कठिन है।

पूर्ण हिन्दु समाज माने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

आज किसी को कहेंगे कि संघ संस्था नहीं है, सम्पूर्ण हिन्दु समाज है वह आपकी तरफ देखेगा, सोचेगा कि यह पागखाने से निकला हुआ आदमी तो नहीं है। अरे सम्पूर्ण हिन्दु समाज कैसे हो सकता है। लेकिन धारणा यही है कि संघ हिन्दु समाज के अन्तर्गत संगठन खड़ा करना नहीं चाहता। हिन्दु समाज के अन्तर्गत हिन्दु समाज के कल्याण के लिए कई संगठन खड़े हैं। उन्होंने बहुत काम किया, सुधार का काम किया, सुरक्षा का काम किया। लेकिन चलते चलते वे सारे सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित हो गये। कोई अपना सम्प्रदाय खड़ा हो। यह डा० जी की

कल्पना नहीं थी। यह संघ सम्प्रदाय नहीं बनना चाहिए। संघ यानि सम्पूर्ण हिन्दु समाज। बड़ी कल्पना की दृष्टि से संघ और सम्पूर्ण हिन्दु समाज सब ओर व्याप्त है। Conceptually the Sangh & Society are co-existed। मानसिकता की दृष्टि से संघ सम्पूर्ण समाज के साथ एकात्म है। Psychologically RSS is identifed with the entire Hindu Society. हम सम्पूर्ण हिन्दु समाज का एक हिस्सा नहीं हैं। हिन्दु समाज के अन्तर्गत खड़ा किया हुआ एक संगठन नहीं है। पंथ नहीं है, दल नहीं है, सम्प्रदाय नहीं है। सम्पूर्ण हिन्दु समाज माने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। हां हिन्दु समाज के सभी लोगों में आज एकात्मता का संस्कार नहीं है, अंगांगी भाव का संस्कार नहीं है। यह कोई संस्था नहीं। असंकारित लोगों से संस्कारित लोगों को पहचानने में सुविधा हो इसलिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नाम रखा गया। लेकिन ये कल्पना नहीं है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ यह नाम आखिर तक चलता रहे। कल्पना यह है कि यह जो संघ स्थान पर दिखने वाला समाज का दृश्य है" Nation is Miniature कि राष्ट्र की छोटी प्रतिकृति। उसी की सीमाएँ ते बढ़ाते इतनी बढ़ना कि संघ स्थान की सीमाएँ और हिन्दुस्तान की सीमाएँ सब ओर व्याप्त हो जाएँ। अपना सम्पूर्ण समाज संस्कारित माने संघमय बन जाये। संघ समाज में विलीन हो जाये। इसके कारण संघ और समाज यह जो द्वैत आज दिखाई देता है वह द्वैत समाप्त हो जाये। संघ और समाज एक रूप हो जाये। जब कोई घाव या जख्म रहता है तब तक उसके ऊपर झिल्ली आती है इसका मतलब है अभी वो घाव पूरा भरा नहीं है। लेकिन जख्म जब पूरा अच्छा होता है तो स्वाभाविक रूप से झिल्ली गल जाती है।

वैसे ही विघटन का जख्म जो हिन्दु समाज को हैं जब वह अच्छा हो जायेगा तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की जो झिल्ली है वह स्वयं गल जायेगी। समाज संघमय हो जायेगा तथा संघ समाज में विलीन हो जायेगा। यह धारणा लेकर ही संघ का काम चला। संघ संस्था नहीं है संगठन है। अब यह सामान्य आदमी के पल्ले पड़ना कठिन है कि उनको संस्थागत विचार करने की आदत है। दलगत विचार करने की आदत है। हिन्दु हमारे स्वयंसेवक हैं, हां जिन्होंने अंगागी भाव का संस्कार ग्रहण किया वो तो प्रत्यक्ष स्वयंसेवक हैं, एक्चुअल स्वयंसेवक हैं। वो शाखा पर आ रहे हैं जिन्हें वह अंगागी भाव ग्रहण करने में देर है, जो अभी तक शाखा नहीं आए हैं। वे हमारे पोटेंशियल स्वयंसेवक हैं। शाखा पर आते हैं वे हमारे पेटेंट स्वयंसेवक हैं जो शाखा पर नहीं आते वे हमारे लेटेंट स्वयंसेवक हैं और यह भी हो सकता है कि जो शाखा पर नहीं आ रहे वे मन में हमारे बारे में गलत बातें सोचते हैं और यहां तक कि वे हमें गाली भी दे सकते हैं। विरोध कर सकते हैं, हमारे साथ मारपीट भी कर सकते हैं। भ्रम के कारण किन्तु हम उनके बारे में आत्मीयता का भाव ही मन में रखेंगे। खराब पुत्र हो सकता है, खराब मां नहीं हो सकती। गलत धारणा के कारण, गलत प्रचार के कारण कोई संघ का विरोध भी करता है तो भी अपना ही है, हिन्दु हैं। बच्चा भी यदि गलत रास्ते पर आ जाये तो मां केवल उसका अनुनय नहीं करती। कभी कभी उसको ठीक करने के लिए चूल्हे में से लकड़ी निकाल कर उसकी पिटाई भी करती है। पर बड़े प्रेम के साथ, दुश्मन समझकर नहीं मेरा लड़का तो सुधरना ही चाहिए, उसका जीवन खराब नहीं होना चाहिए। जब प्यार से वह नहीं समझता तो मां उसकी पिटाई भी करती है लेकिन बहुत प्यार के साथ उसकी पिटाई

करती है। सभी हमारे हैं, हमको गाली देने वाले भी हमारे हैं। हमारे साथ मार पीट करने वाले भी हमारे हैं। सभी संघ के हैं।

परिचय का महत्व

परिचय नहीं तो गड़बड़ हो सकती है। मुझे स्मरण है कि पिछले दिनों यहां एक दो जगह भाषण करते समय हमने कहा कि परिचय न होने के कारण जो खून के रिश्ते वाले हैं वे भी एक दूसरे के साथ लड़ सकते हैं। मैंने रुस्तम सोहराब का उदाहरण दिया था। पर्शिया में कई राज्य थे और एक राज्य में रुस्तम नाम का एक व्यक्ति था, व्यक्तिगत युद्ध में निष्णात। पर्शिया में उसका नाम बड़ा था, रुस्तम की पत्नी गर्भवती थी। उसी समय कुछ झंझट खड़ी हुई। उस झंझट में उनको भागना पड़ा। भागते समय रुस्तम एक तरफ भाग गया, उसकी पत्नी दूसरी तरफ भाग गई। उस समय बसें और ट्रेन नहीं थे। पत्नी भागते भागते कहां गई रुस्तम को पता नहीं। रुस्तम भागते भागते कहाँ गया पत्नी को पता नहीं। पत्नी जिधर गई थी वहां उसकी जचंगी भी हो गई। लड़के का नाम सोहराब रखा गया। वह बड़ा होने लगा। बचपन से ही उसकी मां उसको कहती थी कि बेटा तुम रुस्तम के बेटे हो मामूली नहीं। उसको भी शस्त्रास्त्र वगैरा सिखाये। जब 20 साल का हो गया तब वह भी अच्छा योद्धा हुआ। वह किसी राजा के यहां नौकरी में था। अब इत्तफाक से जिसकी नौकरी में रुस्तम था वह राजा और जिसकी नौकरी में सोहराब था, दोनों की लड़ाई हो गई। लड़ाई के लिए दोनों सेनाएँ एक दूसरे के सामने खड़ी हो गई। उनकी पद्धति ऐसी थी कि सामूहिक युद्ध से पहले व्यक्तिगत युद्ध होता था,

जिसको डयूल कहते हैं (द्वन्द्व युद्ध) द्वन्द्व युद्ध के लिए उधर से रुस्तम आया और इधर से सोहराब आया । लड़ाई हुई । मेफी अर्नाल्ड ने बहुत अच्छा इसका वर्णन किया है कि ऐसी लड़ाई पहले कभी नहीं हुई थी । ऐसे लगता था कि इसकी जीत होगी परन्तु दूसरे ही क्षण लगता था कि उसकी जीत होगी । लेकिन आखिर ये हुआ कि रुस्तम ने ऐसा वार किया कि सोहराब का सिर नीचे हो गया उसके सिर से खून बहने लगा । उसकी बहादुरी से रुस्तम बहुत प्रभावित हुआ । एक दम रुस्तम सामने आ गया उसका सिर अपनी गोद में ले लिया । सोहराब के सिर से खून बह रहा था । होश टूट रहे थे, उसने मुश्किल से आंखें खोलीं उसकी तरफ देखा और बोला, "काश इस वक्त मेरा बाप रुस्तम यहां होता तो मेरे खून का बदला ज़रूर लेता ।" जैसे ही रुस्तम ने यह सुना, तो वह कांप गया और उसने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? "मैं रुस्तम का बेटा सोहराब हूं" वह बोला और उसके प्राण निकल गये । बाप ने बेटे की हत्या की ।

आपने रामायण सीरियल देखा है रामचन्द्र जी के दोनों बेटे रामचन्द्र जी को चैलेंज करते हैं । कहते हैं कि तुम्हारी यह दादागिरी नहीं चलने देंगे । यह रामचन्द्र जी का घोड़ा नहीं जा सकता । पहले हमारे साथ लड़ना होगा । पिता का विरोध पुत्र कर रहे थे । महाभारत की सीरियल आपने देखी होगी, भीष्म की मृत्यु हुई । कर्ण को सेनापति बनाया गया, बाद में कर्ण को बताया गया कि लड़ो मत, तुम पहले पांडव हो, कुन्ती के पहले पुत्र तुम हो, युधिष्ठर और बाकी सब तुम्हारे बाद पैदा हुए हैं । तुम कुन्ती के पुत्र हो । कर्ण ने कहा कि अब तो देर हो गई है । प्वाइंट ऑफ नॉ रिटरन आ गया है । अब यहाँ से वापस नहीं जाया जा सकता । यह परिचय पहले दिया जाता तो इतिहास

का प्रवाह बदल जाता। अब कुछ नहीं होगा, जो होगा मैदान में फैसला होगा। गड़बड़ हुई क्योंकि परिचय नहीं था। परिचय न होने के कारण इस तरह की गड़बड़ियां तो हो सकती हैं। इसलिए संघ को अगर कोई गाली देता है तो यह समझना, कि बेचारे को परिचय नहीं है। परिचय करा देना। मां का काम है बेटे का काम नहीं है। हमारा मातृ-हृदय है, हमारी भूमिका माता की है। तो हमें गाली देने वाले भी, हमारे साथ मारपीट करने वाले भी, सभी हमारे हैं, क्योंकि वे हिन्दु हैं, हर एक पोटेंशियल स्वयंसेवक है। इसलिए संघ याने सम्पूर्ण हिन्दु समाज यह सम्प्रदाय न हो इसकी बहुत फिकर डा० जी ने की थी।

अलग पहचान नहीं

उदाहरण के लिए एक दो बातें बताता हूं पुराने लोग तो सभी बातें जानते हैं। लेकिन नये लोगों के लिए एक दो बातें बताता हूं। उन दिनों मिलट्री वगैरह की परेड होती थी, फिर काली तिरछी टोपी रहती थी और गणवेश में जब लोग पथ संचलन करते तो इम्प्रेशन अच्छा होता था। किसी ने सुझाव दिया कि भई ऐसा करे जो संघ का स्वयंसेवक है उसकी कोई निशानी होनी चाहिए ताकि वह दूर से पहचाना जाये। जैसे या तो आर० एस० एस० का बिला यहाँ लगाये या काली तिरछी टोपी लगानी चाहिए। कुछ न कुछ अपनी निशानी होनी चाहिए। डा० जी ने कहा कि इससे तो हम सम्प्रदाय बन जायेंगे, हम सम्पूर्ण से कोई अलग हैं ऐसा भाव इससे पैदा होगा। हम तो चाहते हैं कि हम समाज के साथ घुल मिल जायें, कोई अपनी अलग से पहचान नहीं दिखानी चाहिए। इसलिए उन्होंने, कोई अलग निशानी नहीं दी।

एक बार महाराष्ट्र में वहां के स्वयंसेवकों ने एक को-ऑपरेटिव बैंक संगठित की थी। वहां के जो प्रमुख थे उन्होंने कहा कि डा० जी यह अपनी संघ की ही बैंक है क्योंकि स्वयंसेवकों ने चलाई है। डा० जी ने कहा सारी संघ की बैंक है। यही संघ की बैंक है ऐसा नहीं। हाँ इसकी विशेषता है कि ही इस बैंक में संघ है, अन्य बैंकों में नहीं है। बैंक तो जितनी तुम्हारे शहर में चलती है वह सब आर० एस० एस० की हैं, हमारी ही हैं क्योंकि समाज की हैं किन्तु हमारे बैंक में आर० एस० एस० है, बाकी बैंकों में नहीं है। हमारे किसी भी सरसंघ चालक जी ने और डा० जी ने नहीं कहा कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हिन्दु राष्ट्र को परमवैभव तक ले जायेगा। डा० जी ने भी कहा और बाद में भी कहा गया कि रा. स. स. के द्वारा सामर्थ्यशाली बना हुआ हिन्दु समाज परमवैभव तक जायेगा। संघ ने यह नहीं कहा कि संघ सब कुछ नहीं करेगा। हमारी घोषणा है कि संघ कुछ नहीं करेगा किन्तु संघ द्वारा सामर्थ्यशाली बना हुआ हिन्दु समाज, हिन्दु राष्ट्र को परमवैभव तक ले जायेगा।

मृत्यु के पांच सात दिन पहले डा. जी ने पूछा कि भई संघ के यदि किसी श्रेष्ठ अधिकारी की मृत्यु हो जाती है तो उसका शवदाह किस ढंग से होना चाहिए। फ्यूनरल किस ढंग से होना चाहिए। किसी ने कहा कि मिलिट्री फैशन से होना चाहिए, क्योंकि उस समय मिलिट्री परेड ही चलती थी। तो डा. जी ने कहा इसीलिए मैंने प्रश्न पूछा था ये अपनी पद्धति नहीं है। हमारा संगठग सेना का संगठन नहीं है। हम समाज हैं, सारा समाज सेना नहीं है, हम भी सेना नहीं हैं। समाज में सामान्यत: जैसे अन्तिम संस्कार होता है वैसा ही अन्तिम संस्कार हमारे अधिकारी का होगा। डा. जी का ऐसा ही हुआ। उसके बाद उस

समय जो एकमात्र पेपर 'महाराष्ट्र' इस नाम का नागपुर से निकलता था उसके अग्रलेख मैं डा. जी की खबर थी। उनके बारे में बहुत अच्छा लिखा गया था। एक पैरा यह भी था कि जरा एक अखरने वाली बात हो गई, उन्होंने इतना बड़ा सैनिक संगठन खड़ा किया, उनका अन्तिम संस्कार भी सेना जैसा होना चाहिए था। संघ वालों ने यह गलती की सेना जैसा अन्तिम संस्कार नहीं किया। हम गीत सिखाने वाले हैं और हम दण्ड, खड्ग, त्रिशूल सिखाने वाले भी हैं। सब कुछ करते हैं, पर हमारा कोई अखाड़ा नहीं है, व्यायामशाला नहीं है, सांस्कृतिक इस तरह की संस्था भी नहीं है। हम सम्प्रदाय न बने इसलिए हमारी प्रार्थना में कहा गया 'प्रभोशक्तिमन हिन्दु राष्ट्रांगभूतः'। हम हिन्दू राष्ट्र के अंगभूत हैं, हमने यह नहीं कहा कि हम तिरछी टोपी लगाने वाले हैं, नेकर पहनने वाले संघ वाले हैं। हमने प्रार्थना में 'वयं हिन्दुराष्ट्रांगभूतां' ऐसा कहा।

संघ एक पार्टी नहीं और न ही उसके विंग हैं

संघ यानि सम्पूर्ण हिन्दु समाज और उसका संगठन "एनटायर सोसायटी इन ऐ आरगानाईज्ड स्टेट आफ अफेयर" सम्पूर्ण समाज को संगठित अवस्था में लाना। समाज के अन्तर्गत संगठन खड़ा करना यह अपना काम नहीं और इस दृष्टि से उन्होंने कहा कि हम संगठन का काम करेंगे। किन्तु प्रश्न आया कि केवल संगठन का ही काम करेंगे तो बाकी कामों का क्या होगा। होते होते फिर कहा गया कि भई सब काम होंगे, कोई काम नहीं रहेगा। कोई राष्ट्रीय कार्य ऐसा नहीं रहेगा जो करणीय है लेकिन नहीं किया। संघ नहीं करेगा फिर कौन करेगा ? कहा गया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से प्रेरणा और

संस्कार प्राप्त किये हुए स्वयंसेवक करेंगे। सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ एकात्म होने का भाव होने के कारण स्वाभाविक रूप से अपनी-अपनी रूचि, प्रकृति, प्रवृति के अनुसार स्वयंसेवक राष्ट्र जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करेंगे। वहां उपयुक्त कार्यों की रचना करेंगे। उपयुक्त विचारों का विकास करेंगे। इस तरह से राष्ट्र पुर्ननिर्माण के लिए जो कार्य चाहिए, जो विचार चाहिए सभी का निर्माण होगा। स्वयंसेवक कार्य और विचारों का विकास करेंगे। संघ संगठन ही करेगा और कुछ नहीं करेगा, संघ के द्वारा निर्माण किये हुए स्वयंसेवक बाकी सब उपयुक्त काम करेंगे। माने डिवीजन आफ लेबर हो गया हो। संघ ने स्वयंसेवकों का निर्माण करना। स्वयंसेवकों ने विभिन्न कार्यों का निर्माण करना। इसको भी समझना लोगों के लिए बहुत कठिन हो गया था। इसका कारण यह है कि ऐसी रचना पहले हुई ही नहीं। प. पू. डा. जी की विशेषता है। अभूतपूर्व है। इस तरह की प्रतिभा का तो विचार अभी तक आया ही नहीं। हमारे यहां तो लोग केवल पश्चिम का अंधानुकरण करते हुए विचार करते हैं। कोई भी माडल हो तो पश्चिमी से ही लेना चाहते हैं। पश्चिम के माडल पर ही कम्युनिस्ट पार्टी है। कम्युनिस्ट पार्टी के विंगस अलग अलग हैं, काम कर रहे हैं। एक मजदूर विंग है, एक किसान विंग है। एक विद्यार्थी विंग है उनको बोलते हैं ट्रांसमिशन बेल्ट या Front Organization या विंग। इसका मतलब होता है कि कम्युनिस्ट पार्टी सेन्टर में है बाकी सारा समाज फैला हुआ है। सेंटर का दल कम्युनिस्ट और बाकी समाज के बीच जो काम करते हैं, उनको ट्रांसमिशन बेल्ट कहते हैं। इसी प्रकार लोगों ने सोचा ये सारे संघ के फ्रंट हैं, संस्थाओं में स्वयंसेवक कार्य कर रहे हैं। ये सारे संघ के ट्रांसमिशन बेल्ट

हो गये। संघ के विंगस हो गये। प्रारम्भ से कहा गया है कि संघ की कोई संस्था या विंग नहीं। सारा समाज ही हम हैं तो जब हम सारा समाज हैं तो ट्रांसमिशन बैल्ट की जगह कहां रहेगी? हमारे विंग यानी हमारे स्वयंसेवक। स्वयंसेवक जो संस्थाएँ चला रहे हैं वो हमारी विंगस नहीं हैं, हमारे फ्रंट आरगानाईजेशन नहीं हैं, ट्रांसमिशन बैल्ट नहीं हैं। जैसे कम्युनिस्टों की कल्पना है। क्योंकि कम्युनिस्ट एक पार्टी है। पार्टी यह शब्द पार्ट से निकला है। पार्ट का मतलब होता है, पार्ट आफ सोसाइटी। और आर. एस. एस. तो होल आफ द सोसायटी है। सम्पूर्ण समाज यानी रा. स्वं. संघ है। तो होल कैन नाट बी इक्वलड विद ए पारट जो सम्पूर्ण हैं वो एक अंश के साथ एकात्म करना सम्भव नहीं है। इसको बराबर करना सम्भव नहीं है। संघ पार्टी नहीं है संघ सम्पूर्ण समाज है। कम्युनिस्ट एक पार्टी है पार्ट आफ द सोसायटी। उनके लिए ठीक है कि यह संस्था हमारी फ्रंट आरगानाइजेशन है। वो संस्था हमारी फ्रंट आरगानाईजेशन है। भारतीय मजदूर संघ आर. एस. एस. का फ्रंट आरगानाईजेशन नहीं है। हमारे लिए कोई फ्रंट आरगानाईजेशन नहीं है। लेकिन एक एक स्वयंसेवक हमारा विंग है। जो पश्चिम की रचना छोड़कर हिन्दु रचना जानते नहीं उनके लिए यह अनोखी बात थी। हो सकता है कि डा. जी ने सारा विज़न देखा हो। संघ के द्वारा, संघ के माध्यम से संस्कार और प्रेरणा प्राप्त किये हुए स्वयंसेवक सब कुछ करेंगे और इस तरह से राष्ट्र पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक विचारों का विकास और कार्यों की रचना होगी लेकिन यह भी कहा गया कि यह करते समय कुछ पथ्यों की आवश्यकता है, परहेज नहीं रखेंगे तो गड़बड़ हो जायेगी। त्रिविध पथ्य बताया गया है।

त्रिविध पथ्य

यह पहले से अभिप्रेत था कि संघ के स्वयंसेवक विविध क्षेत्रों में जाकर काम करेंगे। श्रम विभाजन पहले से ही था। संघ स्वयंसेवक का निर्माण करेगा। स्वयंसेवक बाकी क्षेत्रों का निर्माण करेंगे। लेकिन अन्य क्षेत्रों में जाकर कार्य की रचना तथा विकास करते समय तीन तरह के पथ्यों का पालन करना चाहिए। इनका पालन नहीं किया तो गड़बड़ होगी ऐसा भी कहा गया। थाना बैठक में विस्तृत ढंग से प. पू. श्री गुरुजी ने यह विषय रखा। एक हम जिस क्षेत्र में जाते हैं उस क्षेत्र के कार्य संघ के आदर्शो के प्रकाश में ही चलने चाहिएँ। यह पहला पथ्य है।

दूसरा पथ्य है कि हमें दूसरे किसी क्षेत्र में जाना पड़ा है, क्यों जाना पड़ा है, क्योंकि वहां काम करने वाले लोग ठीक तरह काम नहीं कर रहे हैं। इसीलिए जाना पड़ा है। वहां पहले से वायुमण्डल कुछ गन्दा है, जीवन मूल्य ठीक नहीं हैं। इसीलिए जाना पड़ता है। अब उस क्षेत्र में जाने के बाद, रा. स्व. संघ ने हमें अपने और बाहर के लोगों के साथ व्यवहार करने की रीतिनीति, पद्धति सिखाई है, उस रीतिनीति पद्धति को वहां इंट्रोड्यूस करना है। जहां हम जाते हैं वहां पहले से गलत वायुमण्डल है वहां की अलग रीतिनीति होने से सम्भव होता है कि तात्कालिक यश प्राप्त करने के लालच में जो गलत वेल्यू आफ लाइफ को लेकर चल रहे उसी तरह का वायुमण्डल, उसी तरह के वेल्यू आफ लाईफ लेकर और उनमें जैसे कुछ तिकड़मबाजी, चालाकी, हथकण्डे अपनाकर और तुरन्त कुछ न कुछ यश प्राप्त हो इसलिए संघ की रीति नीति पद्धति को भूल जाना या छोड़ देना यह हो सकता है, ऐसा नहीं होना

चाहिए। देर लगे तो आपत्ति नहीं होनी चाहिए, लेकिन संघ ने जो रीति नीति पद्धति बनाई है, उसी से चलना होगा। ये नहीं चलेगा कि हमको मजदूर क्षेत्र में भेजा, फिर किसी ने कहा दतोपंत ठेंगड़ी वह मालिकों से बहुत पैसा वगैरा लेते हैं। हमको कार्यवाह जी बुलाते हैं। क्यों ठेंगड़ी जी। मालिकों से बहुत पैसा वगैरा लेते हैं। वे कार्यवाह जी को कहें, मिस्टर यह मजदूर संघ चलाना कोई मामूली बात नहीं है, ये इतना सरल नहीं है कि नेकर पहन ली और दक्ष आरम कर लिया ये बड़ी टेढ़ी खीर है मजदूर क्षेत्र। वहां यदि हमें भेजा गया तो संघ ने जो रीति नीति पद्धति बनाई है, वो हमको इंटरोड्यूस करनी है, इसलिए भेजा गया है। इसमें कष्ट होगा, देर लगेगी, अधिक मेहनत करनी पड़ेगी। तो दूसरा पथ्य यह बताया कि संघ की रीति नीति को लेकर चलना है।

तीसरी एक बात बताई गई। यह कहा गया कि हम सर्वसाधारण स्वयंसेवक को भी आग्रह करते हैं कि हर दिन शाखा पर आना चाहिए। संघ वाले कहते हैं हम संस्कार देते हैं। समाज समर्पण कर संस्कार देते हैं। अंगागी भाव के संस्कार देते हैं। यही दावा संघ वाले करते हैं। लेकिन हर एक आदमी को कहते हैं कि मरते दम तक शाखा पर आना ही चाहिए। बेचारा बुड्ढा हो जाता है, कमर भी झुक जाती है, निकर पहनने में कष्ट होता है तो भी संघ स्थान पर आने का आग्रह छूटता नहीं। ऐसी व्यवस्था यहां नहीं है कि 15 साल रेगुलरली शाखा में आ गये। आपको एक प्रमाण पत्र दे दिया जाये कि ये मेनुफेक्चरड गुड है इसमें डेंजर होने की कोई सम्भावना नहीं है। ऐसा कोई प्रमाण पत्र नहीं है आखिरी दम तक आना पड़ता है 15 साल 20 साल 25 साल से बेचारा आ रहा है बुड्ढा आदमी है काहे

के लिए उसको कष्ट दे रहे हो। इसका एक कारण है कि मनुष्य का मन पीतल का बर्तन है। पीतल के बर्तन को हर दिन मांजना ही पड़ता है। अब मांजने से वो स्वच्छ हो जाता है यह दावा भी सही है, लेकिन कोई यदि कहेगा कि आज मैंने बिल्कुल स्वच्छ ऐसा पीतल का बर्तन मांज लिया। अब अगले दिन हम मांजेंगे नहीं तो स्वच्छ रहने वाला नहीं वह तो गन्दा हो जाएगा। हर दिन उसको मांजना पड़ता है, तब तो वो स्वच्छ रहता है। पीतल के बर्तन के समान मनुष्य का मन है तो हर दिन संस्कार चाहिए। इसलिए हर दिन शाखा पर आने का आग्रह है। फिर कहा गया है कि हर दिन शाखा पर आना चाहिए यह सर्वसामान्य 'स्वयं सेवकों' के लिए भी आग्रह पूर्वक कहा जाता है। अब सेवक भी तो बाहर के वायुमण्डल में रहता है। उसमें भी गन्दगियां आ गई होंगी, उसके लिए आग्रह है। लेकिन आपको जिस कार्यक्षेत्र में भेजा गया है तो इसलिए भेजा गया है कि वहां पर गन्दा वायुमण्डल है। जानबूझकर 24 घण्टे गन्दे वायुमण्डल में रहते हैं तो आपके लिए तो शाखा पर आना सामान्य स्वयंसेवकों के लिए जितना आवश्यक है, उससे ज्यादा आपके लिए आवश्यक है। सामान्य स्वयंसेवक को जितने आग्रहपूर्वक शाखा पर आना पड़ता है उससे अधिक आग्रह पूर्वक अन्य क्षेत्र में कार्य करने वाले स्वयंसेवक को शाखा पर आना चाहिए, यह तीसरी पथ्य है। तो नम्बर एक कि संघ के सिद्धान्तों के प्रकाश में ही अपने क्षेत्र का काम खड़ा करना, नम्बर दो संघ ने जो व्यवहार की रीति नीति पद्धति सिखाई है उसी को वहां इंटरोड्यूस करना, नम्बर तीन सामान्य स्वयंसेवक जितने आग्रहपूर्वक दैनिन्दन शाखा पर आता है, उससे अधिक आग्रहपूर्वक दैनन्दिन शाखा पर आना। तीन तरह के पथ्य के साथ विविध क्षेत्रों में गये हुए

स्वयंसेवक यदि काम करेंगे तो वह कार्य निर्दोष रहेगा, यह कार्य स्वच्छ रहेगा, आदर्श रहेगा। ये तीनों में से कोई भी एक या एक से अधिक पथ्य छूट जाता है तो काम में फिर गड़बड़ियां पैदा होंगी Perversions विकृतियां पैदा होंगी।

कुछ कठिनाइयां

मैंने यह कहा कि ये जो त्रिविध पथ्य है उनके पालन करने में दोनों तरफ से कुछ कठिनाइयां निर्मित हो सकती हैं। अन्य क्षेत्रों में काम करने के लिए जो लोग जाते हैं उनकी ओर से भी कुछ कठिनाइयां हैं और कुछ कठिनाइयां स्थानीय स्वयंसेवकों की ओर से भी दिखती हैं। स्थानीय स्वयंसेवक, स्थानीय अधिकारी इनके व्यवहार द्वारा भी कुछ कठिनाइयां निर्मित होती हैं, अन्य क्षेत्रों में आने वाले स्वयंसेवकों के कारण भी कठिनाइयां निर्माण होती हैं।

कभी-कभी कुछ स्वयंसेवक एक 'एक्सट्रीम'' पर जाकर ऐसी बात करते हैं कि हम प्रत्यक्ष संघ कार्य में हैं वह फस्ट क्लास है। स्वयंसेवक निर्माण का कार्य ही मूल कार्य है बाकी जो काम करते हैं वे "सैकेंड क्लास" स्वयंसेवक है। वे हमसे छोटा काम करते हैं। यह धारणा हो जाती है। यह धारणा अन्य क्षेत्रों में काम करने वाले हमारे अच्छे प्रचारकों के बारे में भी हो जाती है। दूसरा एक "एक्सट्रीम" भी अनुभव में आता है। वह यह कि लाड़ प्यार करते हुए आदमी को बिगाड़ना। लाड़-प्यार का मेरा मतलब है कि यह कार्यकर्ता दूसरे क्षेत्र में आ गया है। उसे दूसरों की चिंता करनी है, रात रात जागरण करना होता है। काहे को इसे प्रभात शाखा पर आने का आग्रह करे। इसे प्रभात शाखा से छुट्टी दे दो। लाड़ प्यार का प्रकार जो मैंने स्वयं अनुभव किया हे वही बोलना ज्यादा उचित रहेगा। मैं INTUC

में काम करता था। वह कांग्रेसी काम था। कभी हमारे खिलाफ एक बड़ा सैक्शन पोस्टर लगा कर हमें CONDEMN करता था। हमें वहां पकड़ रखनी है तो बहुत मेहनत करनी पड़ती थी। बहुत काम करना पड़ता था। रात को डेढ़ दो बजे तक वापस आते थे। कार्यालय में जो अपना पहला कमरा है वहां मैं तथा श्री क्षीर सागर जी दो ही लोग रहते थे। वे कार्यालय प्रमुख थे। वे कमरे के अन्दर से कुण्डी नहीं लगाते थे, वोल्ट नहीं करते थे। दरवाजे के पास कुर्सी रख देते थे तो मैं कुर्सी हटाते हुए अन्दर आ वोल्ट लगाकर सो जाता था और उनको "डिस्टरब" नहीं करता था, उनको पता था कि इसको हर रोज देर होती है। अब सुबह मा. बाबा साहब आप्टे जी ने प्रातः स्मरण का सिलसिला शुरू किया। क्षीर सागर जी बराबर नियमिन रूप से जाते थे पर मुझे नहीं जगाते थे, अब बाबा साहेब ने उनसे पूछना कि अरे पांडव! ठेगड़ी दिखाई नहीं दे रहे हैं। उन्होंने बताना कि वह रात्रि बड़ी देरी से आता है। बाबा साहेब ने भोजन के समय संकेत करना कि प्रातः स्मरण शुरू हुआ है, बड़े महत्व का है, परन्तु मेरे ध्यान में नहीं आया। मेरा वही क्रम जारी रहा। मैं अच्छी नींद लेता रहा। एक दिन बाबा साहब आप्टे तथा कार्यालय के अन्य उपस्थित बन्धुओं ने मेरे चारों ओर बैठ कर प्रातः स्मरण कहना शुरू कर दिया तो जब मैंने "कराग्रे बसते लक्ष्मी" सुना तो मुझे लगा कि कहीं मैं स्वप्न तो नहीं ले रहा। आंख खुलने पर मैंने बड़ी शर्म महसूस की। आप सो जाइए बाबा साहब ने कहा और मेरे सीने पर हाथ रख दिया।

अतः दोनों 'एक्सट्रीम' ठीक नहीं। न तो पारिवारिक क्षेत्रों में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता को "सैकेण्ड क्लास" स्वयंसेवक

मानना और न ही उसे कोई सहूलियत देना। वह शाखा में न आया तो भी चलेगा, यह ठीक नहीं। इस दृष्टि से दूसरे क्षेत्र में जाने वाले व्यक्ति पर बहुत कुछ निर्भर करता है। क्या वह पथ्य का ठीक-प्रकार पालन करता है, क्या वह पथ्य को ठीक प्रकार से समझता है ?.

कभी-कभी बार-बार कहने पर भी हम ठीक ढंग से नहीं समझ पाते। इस दृष्टि से मुझे अपना एक दूसरा उदाहरण याद आता है, मेरे पास जनसंघ का काम था। Scheduled Caste Federation के कार्य की ओर ध्यान देना पड़ता था। मैं सायं शाखा का स्वयंसेवक था जितने भी कार्यक्रम आते थे सायंकाल के समय आते थे।

शाखा में प्रतिदिन जाना चाहिए यह मैं लोगों को बताता था पर स्वयं नहीं जा पाता था। यह भी ध्यान में नहीं आया कि प्रभात शाखा में जाने की adjustment की जाए। मन में था कि मैं कोई दूसरा कार्य थोड़ा ही कर रहा हूं। संघ ने ही मुझे जो जनसंघ का कार्य दिया है उसी संघ कार्य को ही मैं कर रहा हूं। इस लिए मेरे मन में कोई conscience prick करने वाली बात नहीं थी। सौभाग्य से 8-10 दिनों के लिए श्री गुरुजी नागपुर आए। एक दिन चाय के लिए सभी लोग पंक्ति में बैठे थे। मैं श्री गुरुजी के सामने कप लेकर बैठा था। श्री गुरुजी ने कहा "आज-कल बड़े ज़ोरों से काम में लगे हो।" मुझे लगा कि मेरी पीठ थपथपाई जा रही है। "इतना अधिक कार्य करना काफी कठिन पड़ता होगा। जो करते हैं वही समझ पाते हैं। डॉ० आबा जी थट्टे तुम्हारे बारे में शाखा न जाने की बात कह रहे थे। मैंने उन्हें कहा कि आप समझते नहीं, ठेंगड़ी जी दिन-रात संघ द्वारा दिया हुआ काम करते हैं परन्तु आबा जी की समझ में नहीं आता। आगे

पूछा कि मेरी धारणा बराबर है न ? पहले मैं कुछ देर चुप रहा, बाद में कुरेद कर दुबारा पूछा तो मैंने हां कही। परम पूजनीय श्री गुरुजी बोले—मैं भी तो 24 घण्टे संघ का ही काम करता हूं, अब मुझे भी रोज़ शाखा जाने से छुट्टी मिल गई। सारी बात मेरी समझ में आ गई। बाद में मैंने प्रभात शाखा में जाना शुरू कर दिया। एक यह कठिनाई अन्य क्षेत्र में जाने वाले स्वयं सेवक की होती है।

एक दूसरी ही कठिनाई है। अन्य क्षेत्र में जाने के बाद आदमी जोश से काम में लग जाता है। लगना भी चाहिए। यही अपेक्षित है और फिर जोश में यह होश ज़रा कम हो जाता है। वहां का वायुमण्डल, वहां के जीवन मूल्य, वहां की रीति-नीति पद्धति और उसके साथ-साथ वैसे ही सिद्धता से पेश आना चाहिए।

"गंगा गए गंगादास, जमना गए जमनादास"

ऐसा होता है। हम सोचते हैं कि यह ठीक नहीं परन्तु एक मनुष्य के नाते ऐसा किया जाए यह भी एक गड़बड़ है।

प्रसिद्धि की लालसा

संघ कार्य में प्रसिद्धि बिल्कुल नहीं। अन्य क्षेत्र में आप कुछ विशेष काम करें, न करें परन्तु स्टेटमैंट आप ने दिया तो प्रैस में आ जाता है, भाषण दिया, प्रैस में आ जाता है तो हमेशा अपना नाम, अपनी जय-जयकार वगैरा सुनने के कारण भी आदमी का दिमाग थोड़ा बिगड़ जाता है।

हमारे मित्र कहते थे कि लोग भी दिवाना बना देते हैं, ऐसा हो जाता है। संघ क्षेत्र में फर्क नहीं आता है। कितने ऐसे प्रचारक हैं जो 40 साल या 50 साल से काम कर रहे हैं, किसी को नाम

की इच्छा नहीं, प्रसिद्धि पराङ्ग-मुखता है। लेकिन अन्य क्षेत्र में प्रसिद्धि के पीछे कभी-कभी जाना पड़ता है। क्यों जाना पड़ता है? क्योंकि ऐसा लगता है और वो ठीक भी है कि अन्ततः हमारा कुछ स्टैण्ड है, हमारी भूमिका है, हमारा कुछ काम है। थोड़ी इसको प्रसिद्धि मिल गई। अखबारों में आ गया। लोगों को पता चला तो इसके कारण काम की सहायता होगी और इसमें थोड़ा-सा वृत-पत्रीय प्रसिद्धि का अवलम्बन करना चाहिए, ऐसा लगता है। इसका आश्रय नहीं लिया, ऐसा नहीं है। डॉ० जी के समय में बिल्कुल पहला जो विजयादशमी का उत्सव हुआ उसका एक छोटा-सा वृत नागपुर के (महाराष्ट्र) के पेपर में छप कर आया था। मज़दूर क्षेत्र में एक वाक्य प्रयोग है। आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन. वैसे ही आवश्यकता पर आधारित कम से कम प्रसिद्धि होनी चाहिए। लेकिन केवल प्रसिद्धि के लिए प्रसिद्धि ऐसा नहीं। शुरूआत यहां से होती है कि काम की सहायता हो, इसलिए प्रसिद्धि। परन्तु होते-होते फिर अपना नाम अखबारों में देखने का एक चसका लग जाता है। जिससे प्रसिद्धि हो सकती है उतना ही काम करना बाकी करना ही नहीं। कितना फर्क हो जाता है, यह प्रसिद्धि भी क्या चीज़ है। यह बारिश के समान है। ओपटिमम पवाइंट बारिश का होता है। उससे ज्यादा या कम बारिश हुई तो अकाल आता है।

अपने अधःपतन से बचो

मुझे यदि पता चले कि मैं नीचे जा रहा हूं तो शायद मैं अपने को संभाल सकूँ। स्वयं अपने को पता न चलते हुए हम नीचे चले जाते हैं। किस उद्देश्य से गये थे और वहां हमारा क्या हो जाता है ऐसी एक घटना है।

अभी जो मैसूर के राजा साहिब हैं उनके ग्रेट ग्रॉंड फादर

कृष्ण राव जी का राज्य था और वे बड़े उदार और जन कल्याण की तरफ ध्यान देने वाले थे। वे राजा साहिब एक बार मोटर में अपने सैकेट्री के साथ कहीं जा रहे थे, तो वहां रास्ते में उन्होंने कहा कि यहां कहीं अपने राज्य की सरकार के द्वारा चलाया गया एक स्कूल है। वनवासी बन्धुओं के लिए स्कूल है। ज़रा देखें क्या है। शाम का समय था तो बच्चे बाहर खेल रहे थे। राजा साहिब आए दरवाज़े के अन्दर गये तो सारे बच्चे इकट्ठे हो गये। राजा साहिब ने देखा कि बच्चे बिल्कुल अशिक्षित परिवारों से आये हुए, जैसे झुग्गी-झोंपड़ी उपेक्षित बस्तियों के बच्चे ऐसे थे और उनकी भाषा भी बड़ी अभद्र थी, जिसमें कटु शब्द थे, अश्लील शब्द थे, गालियां थीं और उनके कपड़े भी बिल्कुल गंदे थे, सारा दृश्य देखकर राजा साहिब ने अपने सैकेट्री से कहा कि भई यहां पढ़ाई तो होती है, लेकिन इनका सांस्कृतिक स्तर अच्छा नहीं। इनका सांस्कृतिक स्तर अच्छा कैसे बनेगा ? सैकेट्री के साथ विचार-विमर्श हुआ, तो सैकेट्री ने सुझाव दिया कि अपने मैसूर में एक शास्त्री है—कुटे सुब्रह्मणयम् शास्त्री उनका नाम है। संस्कृत के बड़े विद्वान हैं, बच्चों को सिखाना भी अच्छी तरह जानते हैं, बच्चों का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा उठाना है तो हम उनको प्रिंसिपल के नाते लायेंगे और वे काम करेंगे। राजा साहिब ने उनको बुलाया तो उन्होंने कहा कि आप कहेंगे तो मैं काम करता हूं। तो उनको वहां भेजा गया। उनका उद्देश्य बच्चों का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा करना था, अच्छा रहन-सहन, अच्छी भाषा हो, इसके लिए उनको भेजा गया। अब राजा साहिब के पीछे तो हज़ार काम रहते थे। तीन साल बाद ऐसे ही शाम को एक दिन उसी रास्ते से कार में सैकेट्री के साथ जा रहे थे, तो राजा साहिब को स्मरण हुआ कि अरे, यहां हमने कुटे सुब्रह्मणयम शास्त्री को रखा था, क्या बच्चों का स्तर कुछ

ऊंचा हुआ या नहीं, देखना चाहिए। शाम का समय था तो राजा साहिब अन्दर आये तो पुराना ही गेट था, गेट के अन्दर गाड़ी आई तो बच्चे उस पर चढ़ गये। अब बच्चे खेल रहे थे, इकट्ठा हो गये, तब राजा को निराशा हुई कि बच्चे तीन साल पहले गन्दी गालियां देते थे और गन्दे कपड़े पहनते थे और गन्दी बातें करते थे, वैसे ही तीन साल के बाद भी कर रहे हैं। तो राजा साहिब ने सैकेट्री से पूछा कि अरे अपने कुटे सुब्रह्मणयम शास्त्री ने क्या किया तीन साल में ? इनका स्तर तो तीन साल में ऊंचा नहीं हुआ है, कहां हैं वे ? सैकेट्री ने देखा, कोई यहां दिखाई नहीं दिया। राजा साहिब गाड़ी में बैठे, जाने लगे। गेट के पास गाड़ी आई तो एक आदमी मिला जिसने ऐसे ही हाफ पैन्ट यानि निक्कर पहन रखी थी, सिर पर कपड़ा बांध रखा था, गाड़ी रुकी तो उसने प्रणाम किया तो राजा साहिब पहचान नहीं सके। तू कौन है अरे ? पहले जब उनसे पूछा जाता था तो कहते थे कि सुब्राहमण्यम शास्त्री। लेकिन अब जैसे झुग्गी झोपड़ी वाले की लय से बोलते हैं, उसी तरह से उन्होंने बोला—सुब्रहमण्यम शास्त्री थे। राजा साहिब ने माथे पर हाथ लगाया। क्यों रे, बच्चों का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा करने के लिए हमने तुम को यहां भेजा था, बच्चों का स्तर तो जहां था वहीं है, इनका स्तर बच्चों के स्तर जैसा हो गया। ये जब देखा तो उन्होंने अपने माथे को हाथ लगाया। तो ये हर एक को देखने की आवश्यकता है कि कहीं हमारे साथ तो ऐसा नहीं होता कि जिस क्षेत्र में हमको भेजा जा रहा है, वो बड़ा गन्दा है, अच्छा नहीं। हम उसको अच्छा करने के लिए जा रहे हैं और हमारा आचरण भी उन सबके जैसा न हो जाये। जैसे वे हैं, वैसे ही हम हैं, ऐसा तो कहीं नहीं होता ? इसका ध्यान रखना चाहिए।

पतन कैसे होता है ?

किस तरह से पतन होता है अच्छे आदमी का, समझदार sincere होते हुए भी। एक श्रेष्ठ कम्युनिस्ट नेता, बड़े अच्छे थे, श्रेष्ठ पुरुष थे। जिस समय पार्लियामैंटरी इलैक्शन्ज़ आए तो उस समय कम्युनिस्ट पार्टी में बहुत विवाद हुआ, चर्चा हुई कि पार्लियामैंट की कमेटी में जाना या नहीं जाना। एक पक्ष था कि जाना चाहिए। दूसरा पक्ष था काहे के लिए जाना चाहिए। जैसे हम अन्य-अन्य कार्यों से जनमानस तैयार करते हैं, वैसे ही इलैक्शन्ज़ से करें। यह बात ठीक है कि खूनी क्रांति (Bloody Revolution) द्वारा ही काम हो सकता है लेकिन खूनी क्रांति के लिए भी जनमानस तैयार करने की आवश्यकता है और उसके लिए हम समाचार पत्र का उपयोग करते हैं और सब तरह के जितने साधन हैं, उनका उपयोग करते हैं तो ऐसे ही पार्लियामैंट का उपयोग जन-जागरण के लिए करेंगे। तो दूसरा विचार था— आप क्या जनमानस तैयार करेंगे ? आप यदि एक बार पार्लियामैंट या असैम्बली के वायुमण्डल में जाते हो तो आपने खूनी-क्रांति के लिए जनमानस तैयार करना तो दूर, कहीं आपकी ही मनोवृत्ति में परिवर्तन न आ जाये और आप आरामप्रस्त न बन जायें—ये दूसरा विचार था। बड़ा विभेद इसके बारे में हुआ। आखिर में तय हुआ कि जाना चाहिए। तो 5-10 लोगों ने चुनाव लड़ा। अब पहली ही बार पार्लियामैंट में आये और वे लोग केरल के थे। केरल बहुत गरीब प्रान्त है। और हममें से हरेक आदमी —कोई किसान क्षेत्र में काम करता था, कोई मज़दूर क्षेत्र में काम करता था। तो वो उनके यहां जाता था, उनके यहां रोटी खाता था, उनकी थाली में ही रोटी खाता था। कभी-कभी रात-

भर वहीं सोना पड़ा तो उनके गन्दे बिस्तर पर सोता था। उन्होंने खूनी-क्रांति के लिए भारत का जनमानस तैयार करना है, यह महान उद्देश्य लेकर चुनाव लड़ा और पार्लियामैंट में आये तो युवक तो वही था। खूनी-क्रांति—उसके लिए जनमानस की तैयारी लक्ष्य था। लेकिन होते-होते नई दिल्ली के वायुमण्डल ने प्रभाव डालना शुरू किया। इतने बड़े-बड़े रास्ते। कहां देखा है केरल में। खुद पार्लियामैंट Air-conditioned था। बंगले वगैरा ऐसे मिल गए, बड़े फ्लैट मिल गए, कभी देखा नहीं था ऐसा। फ्लश लैट्रिन तक कभी देखा नहीं था। हाथ में लोटा लेकर जंगल में जाते थे। उस समय फ्लश लैट्रिन देखा। पहले तो विचार यही था कि इसका उपयोग करते हुए खूनी-क्रांति की ओर बढ़ना है। लेकिन होते-होते भूले भटके, रास्ते पर घूमने की आदत भी होने लगी। घर पर कभी-कभी चीफ मनिस्टर दावत देता है और साल में एकाध बार प्राइम मिनिस्टर तो दावत देता ही है और राष्ट्रपति की दावत तो एक बार होती ही है। तो वहां का सारा ठाठ-बाठ वगैरा देखकर धीरे-धीरे ऐसा लगा कि खूनी-क्रांति तो करनी है, इसमें कोई शक नहीं—यह अपना ध्येय है। लेकिन इतने साल काम किया है, थकान है, थोड़ा-सा आराम कर लेंगे तो फिर से काम में जुट जायेंगे। अधिवेशन समाप्त हुआ और गांव जाने की बारी आई। मन में आया कि अरे यार! गांव में जायेंगे तो फिर से वो बीड़ी-मज़दूरों में जाना पड़ेगा, उनके गन्दे बिस्तर में सोना पड़ेगा। अतः पत्र भेज दिया कि जाड़ा होने के कारण अभी जो बीच में Interval है, पार्लियामैंट के दो Sessions में, शायद अध्ययन के लिए मुझे दिल्ली में ही रुकना पड़ेगा। अब इस समय तो आना संभव नहीं जब अगली बार आऊंगा तो उस समय तुम्हारी सब शिकायतें वगैरा मैं देखूंगा।

इस समय जरा मुझे अध्ययन के लिए छुट्टी चाहिए, ऐसा पत्र भेजा। होते-होते मेरे ही मन में परिवर्तन आने लगा और फिर ऐसा लगा कि भई ठीक है, वहां भी जायेंगे तो खाना-पूर्ति करने के लिए। मज़दूरों के साथ, किसानों के साथ, काम-काज तो रखेंगे लेकिन जितना जल्दी हो सके, उतना फिर से Air-conditioned कारों, मकान में आना, यही ज्यादा अच्छा रहेगा। परिवर्तन होने लगा। "परिवर्तन", इस तरह का परिवर्तन।

चलो मच्छंदर गोरख आया

हमारे यहां दो परस्पर विरोधी कहानियां पुराणों में हैं। मैं बच्चा था तो उस समय एक पिक्चर आई थी—"माया मच्छेन्द्र" उसका नाम था और वो सत्य घटना पर ही आधारित थी। उसमें ऐसा बताया गया था कि मच्छेन्द्र नाथ, नाथ योगी सम्प्रदाय के प्रथम पुरुष थे। भगवान शंकर ने उन्हें उपदेश दिया था। उनके शिष्य गोरख थे। सारे योगी भिक्षा मांगने के लिए निकले तो गुरु महाराज मच्छेन्द्र नाथ अकेले एक दिशा में चल दिए। होते-होते वे एक स्त्री राज्य में पहुंच गये, वहां स्त्रियों का राज्य था। उनको इससे क्या था? वे तो योगीराज थे। बाहर भिक्षा मांगी और नहाने को चल दिए। वहां जो रानी थी, उस रानी ने इनको देखा—बड़े तेजस्वी, बड़े आकर्षक! मतलब रानी आकृष्ट हो गई। रानी ने सोचा कि ये यहीं रहेंगे तो अच्छा होगा। तो रानी ने कहा कि महाराज! आप एक-एक घर में भिक्षा मांगते हो, इससे क्या होगा? आप यहीं रह जाइये, जीवन-भर आपकी व्यवस्था हम करेंगे। उन्होंने कहा कि न! मैं किसी भी एक स्थान पर इस तरह ज्यादा दिन नहीं रहता और यहां तो

रह ही नहीं सकता। यह तो स्त्री-राज्य है, यहां मैं कैसे रहूंगा, मैं योगी हूं, मैं स्त्री-राज्य में नहीं रह सकता। रानी को मनो-विज्ञान (Psychology) का अच्छा अध्ययन (ज्ञान) रहा होगा। इनका weak point क्या है ? उसने जान लिया। उसने कहा— अच्छा, आप डर रहे हैं। अपने को योगी और योगीराज बताते हो। लेकिन तुम डर गये हो। यहां यदि रहोगे तो शायद तुम्हारा योग भंग हो जायेगा, ये डर तुम्हारे मन में है। इसके कारण तुम भागना चाहते हो। अब ये आह्वान था– अहंकार को आह्वान था। मच्छेन्द्र नाथ ने कहा कि कोई डरने की बात नहीं। मैं योगीराज हूं, मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता। रानी बोली— इतनी हिम्मत है तो रहो यहां। तो challenge समझ उन्होंने वहां रहना शुरू किया। राजमहल की सारी सुख-सुविधायें। और फिर मच्छेन्द्र की सोच यही कि मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता, मैं योगीराज हूं। लेकिन रानी ने ऐसी व्यवस्था की थी कि उन्हें सारी सुख-सुविधा प्राप्त हो, बाहर की दुनिया से इनका सम्बन्ध कट जाये। किसी को उनके पास आने नहीं देना है। पहले रानी इनको बाहर जाने नहीं देती थी, फिर इनकी इच्छा बाहर जाने की समाप्त हो गई। फिर तो लगने लगा कि यहाँ ही रहना ठीक है। जैसा होता है, वह सारा हुआ।

अब तो गोरखनाथ और बाकी जो उनके शिष्य थे, ये सारे शिष्य बड़े चिन्तित कि गुरु महाराज का क्या हुआ, कहां गये ? वे खोज करते-करते उस गांव में आये। वहां पूछा कि हमारे गुरु महाराज यहां आये हैं—योगीराज ! लोग बोले—कौन योगीराज ? तो उन्होंने वर्णन किया। वे कहने लगे – "वह जोगड़ा !" रानी के पास रहता है, शर्म नहीं आती उसको। अपने गुरु के बारे में जब ये सुना तो गोरखनाथ वगैरा सब लोगों को बड़ा दुःख हुआ।

उन्होंने सोचा कि यह अच्छा नहीं है। बोले, हम जाकर मिलते हैं। लोग बोले—तुम को मिलने को इजाजत नहीं मिलेगी, वहां पाबन्दी है। उन्होंने तरीका निकाला। पाबन्दी तो थी मिलने की। लेकिन भिखारियों के लिए पाबन्दी नहीं थी। अब इन लोगों को भिखारियों का वेश लेने में कौन-सी कठिनाई थी ? तो गोरख नाथ आदि जो इनके शिष्य थे, गोरखनाथ के नेतृत्व में हाथ में ढोलक और बाकी जो गाने के साधन होते हैं, वो लेकर गाने गाते, भिखारी के वेश में, भीख मांगने के लिए वहां पहुंचे। शाम का समय था और उनको वह दृश्य देखकर सदमा पहुचा। वहां एक झूला था। एक तरफ रानी खड़ी है, एक तरफ मच्छेन्द्र नाथ खड़े हैं और दोनों बड़े आनन्द से झूले पर एक-दूसरे पर धक्का दे रहे हैं। धक्का देने के कारण झूला ऐसे झूम रहा था। दोनों का आनन्दित चेहरा देखकर गोरखनाथ को कैसा धक्का पहुंचा, सभी को कैसा सदमा पहुंचा होगा। खैर, उन्होंने भीख मांगने के लिए गाना शुरू किया। गाना शुरू किया तो उनके साथ जो ढोलक था, वह ढोलक भी बजाना शुरू किया। अब ढोलक की विशेषता थी ढोलक में से जो बोल निकलते थे वे रानी को अलग सुनाई देते थे, मच्छेन्द्र नाथ को अलग सुनाई देते थे। रानी को सुनाई देता था—डुम-डुम, डुम-डुम। लेकिन मच्छेन्द्र नाथ को सुनाई देता था—चलो मच्छेन्द्र गोरख आया, चलो मच्छेन्द्र गोरख आया। मच्छेन्द्र नाथ ने सुन लिया तो समझ गया कि मेरा गटनायक मुझे यहां भी छोड़ने को तैयार नहीं। फिर बाद में जो होता है वह कहानी में आता है कि रात के समय वे भाग गये।

मैं योगीराज हूं, मेरा क्या हो सकता है ? यह ऐसा भी हो सकता है। अभी यह अपने ऊपर है कि हम अपने साथ किस

प्रकार डील (deal) करते हैं।

ध्येयवाद से स्थिरता आती है

दूसरा भी उदाहरण है, वह उदाहरण ऐसे आता है कि— सुर और असुरों का संग्राम चल रहा था। असुरों के गुरु थे शुक्राचार्य, उनके पास सर्जरी (Surgery) की विद्या थी। जो लड़ाई में घायल हो जाते, उन घायल लोगों की Surgery वगैरा करते हुए उन्हें फिर से तैयार करते थे—लड़ाई में सिपाही के नाते काम करने के लिए। देवताओं के पास Surgery नहीं थी, जिसके कारण वे एक बार घायल हो जाते तो फिर से लड़ाई के काम नहीं आते थे। Surgery सीखना चाहिए। शुक्राचार्य के पास जाकर सीखना चाहिए। कौन सीखेगा तो बृहस्पति पुत्र कचदेव की नियुक्ति इस काम पर हुई। कचदेव गये शिष्य के नाते। शुक्राचार्य के पास रहे, सर्जरी सीखना है, यह उनका उद्देश्य था। लेकिन वहां जब रहने लगे तो इनका स्वरूप देखकर शुक्राचार्य की लड़की देवयानी इन पर आसक्त हो गई। आज भी अपने कई लोग अमेरिका, जर्मन में जाते हैं विद्या सीखने के लिए। अब कितने विद्या सीखकर आते हैं, ये तो पता नहीं लेकिन देवयानी को लेकर आने वालों की संख्या काफी है, आजकल तो हालत यह है। वहां यही समस्या उनके सामने थी। उनको बहुत कष्ट झेलना पड़ा। कई बार उनकी हत्या का प्रयास हुआ। कई बार देवयानी ने ही उनको बचाया और ये सारा होने के बाद जो मन्त्र उन्हें सीखना था, वे सीख सके। मन्त्र प्राप्त करने के पश्चात कचदेव वापिस आने के लिए उद्यत हुए। देवयानी ने उनका आंचल पकड़ लिया। कहा, कि मैं जाने नहीं दूंगी। मैं तुम को प्यार करती हूं और तुम्हारे साथ विवाह करने के बाद ही हम

दोनों तुम्हारे यहां जायेंगे। कचदेव ने कहा कि तुम तो मेरी गुरु भगिनी हो। मेरे गुरु की लड़की, माने मेरी गुरु भगिनी हो। फिर तुमने मेरी जान 5-6 बार बचाई है तो तुम मेरी माता हो। मैं तुम्हारे साथ कैसे विवाह कर सकता हूं? देवयानी बोली— क्यों बहानेबाज़ी कर रहे हो, तुम बड़े बेवफा हो, कैसे बोलते हो, वगैरा-वगैरा। लेकिन जैसे कचदेव गये थे निर्मम, निर्लेप, निर्मोह, वैसे ही वापिस आ गये। जिस क्षेत्र में गये उस क्षेत्र के आकर्षण के वे शिकार नहीं बने। अब आदमी मच्छेन्द्र नाथ भी हो सकता है, कचदेव भी हो सकता है। कुछ लोग कहेंगे कि साहब! ये मनुष्य है, स्खलन होता है। ऐसा नहीं है। हम अपने ध्येय के प्रति यदि कट्टर रहें तो जो-जो पथ्य बताए हैं वे हम पालन कर सकते हैं और अपने मन को स्थिर रख सकते हैं। लेकिन बहुत बार जो लोग अपने मन को स्थिर नहीं रख सकते हैं वे ऐसा समझते हैं कि अरे यार! आदमी है, आदमी में थोड़ा बहुत फर्क होता है, बर्दाशत करना चाहिए, इसमें क्या है? इसको Permissiveness बोलते हैं, वह आ जाती है। ध्येयवादी आदमी कट्टर रह सकता है, इसका भी हमने स्वयं अनुभव किया है।

ध्येयवादी को आकर्षण प्रभावित नहीं करते

1970 या 71 के चुनाव की बात है। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस हार गई। विजेता दल मिलकर संविद (यानि संयुक्त विधायक दल) बन गए। संविद की सरकार बनाने की बारी आई। अब अलग-अलग दल, हर मिनिस्ट्री के लिए अपना क्लेम बताते थे। लेकिन एक मिनिस्ट्री ऐसी थी, जिसके लिए अन्य किसी दल ने क्लेम (Claim) नहीं जताया, वह थी लेबर मिनिस्ट्री— मज़दूर-श्रम-विभाग। सभी दलों के लोगों ने कहा कि यहां खींचातानी

वगैरा कुछ नहीं, अपने रामनरेश सिंह बड़े भाई हैं, ये कैबिनेट रैंक के लेबर मिनिस्टर बनें। उन्होंने बड़े भाई को बताया। बड़े भाई तो बैठक में थे नहीं, वे तो अपने घर पर थे। उन्होंने कहा कि जीवन में तुम्हारे लिए अच्छा मौका आया है। सभी दलों ने मान लिया है, संविद में जो शामिल हैं उन्होंने भी मान लिया है कि **Labour Minister** के नाते तुम रहोगे और **Cabinet rank** के रहोगे तो उन्होंने (बड़े भाई ने) कहा कि मैं इसका फैसला नहीं कर सकता। इसका फैसला तो हमारे ठेंगड़ी जी करेंगे। अरे, इसमें फैसले की क्या बात है? ठेंगड़ी जी क्या न कहने वाले हैं? अपना आदमी लेबर मिनिस्टर बनता है तो कौन भला आदमी न कहेगा। उन्होंने कहा कि आप ज़रा एक बार ठेंगड़ी जी से मिल कर आ जाइये। वो हां कहेंगे तो मैं हां करता हूं, वो न कहेंगे तो मैं नहीं बनूँगा। उन्होंने कहा—छोड़ो भी ये तो औपचारिकता मात्र है, **formality** मात्र है।

ठेंगड़ी जी कहां हैं—पता किया। उस समय दीपावली पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की बैठक बैंगलोर में चल रही थी, वहां हम सब लोग थे। वे आये तो हमसे पूछा—मैं आपको मिलने आया था। एक खुशखबरी है। हमने कहा—क्या है? तो सारा वृतान्त बताया कि ऐसा-ऐसा हो रहा है और आपके बड़े भाई लेबर मिनिस्टर (श्रम मन्त्री) बनने जा रहे हैं। हमने कहा कि हमारी इजाजत के बगैर कैसे बन सकते हैं? बोले—वही मैं फारमैलिटी के नाते पूछ रहा था। खैर, आप इजाजत देने ही वाले हैं। मैंने कहा—माफ करना, ऐसा गलत है। उनको आश्चर्य हुआ यानि कि आप अपने बड़े भाई को **Labour Minister** बनने से मना कर रहे हैं। मैंने कहा—ज़रूर करेंगे। ये आप क्या कह रहे हैं,

आप मेरा मज़ाक कर रहे हैं क्या ? आपका आदमी यदि Labour Minister बनेगा तो उत्तर प्रदेश में भारतीय मज़दूर संघ का झण्डा लहरायेगा। मैंने कहा, B.M.S. का झण्डा लहराना, ये मेरा जिम्मा है, आपका जिम्मा नहीं। और इस दृष्टि से ही हम कह रहे हैं कि बड़े भाई मिनिस्टर नहीं बनेंगे। उन्होंने कहा कि मैं आपके साथ बहस नहीं कर सकता। मुझे लगता है कि आप मेरा मज़ाक कर रहे हैं। मैंने कहा कि मज़ाक नहीं कर रहा। वे बोले—वास्तव में आप अनुमति नहीं दे रहे। मैंने कहा—वास्तव में अनुमति नहीं दे रहा, वो मिनिस्टर नहीं हो सकते। ये अल्पाहार (Breakfast) के समय की बात है। भोजन के समय तक उन्होंने और कुछ सोचा। उन्होंने कहा—ज़रा दो मिन्ट आपसे प्राइवेट बात करनी है। वे बोले—ठेंगड़ी जी ! शायद आप ये जो बात कह रहे हैं, मुझे ये बुद्धिमानी की बात नहीं लगती। आपका आदमी संविद सरकार में Cabinet स्तर का मन्त्री बनने जा रहा है—और आप न कर रहे हैं, लेकिन खैर ये आपका जिम्मा है, मज़दूर क्षेत्र कैसे चलाना, न चलाना। लेकिन personally मैं आपका मित्र होने के नाते एक बात बताना चाहता हूं। मैंने कहा—क्या है ? ये बोले—भई ऐसा है कि लखनऊ में सब लोग जानते हैं कि मैं formal permission लेने आपके यहां आया हूं और यहां से वापिस जाने के बाद मंत्रीमंडल (कैबिनेट) में भी उनका समावेश नहीं होगा तो सब लोग समझ जायेंगे कि ठेंगड़ी जी ने अड़ंगा लगाया है। तो बड़े भाई के मन में आपके प्रति क्या अनुभूति होगी। कटुता निर्माण होगी कि जीवन में इतना सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ है, अच्छा मौका प्राप्त हुआ है और ठेंगड़ी जी ने उसमें ऐसे ही बाधा डाल दी। आपके विषय में उनके मन में

कटुता निर्माण होगी। मुझे लगता है कि आप इस पर विचार करिये। हमने कहा कि जो relations (सम्बन्ध) हैं, उनकी आप चिन्ता मत कीजिए, लेकिन उनको लेबर मिनिस्टर बनाना नहीं।

छः महीने के बाद जब मैं गया तो उन्होंने पहले से सन्देश (message) दे रखा था कि जब ठेंगड़ी जी आयें तो पहले मैं 15 मिन्ट अलग से उनसे बात करना चाहता हूं, मिलें। मैंने कहा—अच्छा है। आप नाराज़ मत होना। वे बोले—आपने जो निर्णय लिया ये पागलपन का था, उस समय भी लगता था, आज भी लग रहा है। किन्तु आपने जब कहा कि आप बड़े भाई को मिनिस्टर नहीं बनने देंगे, तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। और उससे ज्यादा आश्चर्य लखनऊ वापिस आने पर हुआ। हमने कहा—क्यों? वे बोले—मैं बड़े भाई के कमरे में गया। मैं मन में सोच रहा था कि किस ढंग से बोलना चाहिए जिसके कारण बड़े भाई को सदमा न पहुंचे, धक्का न पहुंचे, किस भाषा में बोलना चाहिए, यह सोच रहा था। सोचते-सोचते मुझे बात समझ में आई तो उनको बताया कि ये तो ठेंगड़ी जी ने अड़ंगी लगाई—तो उन्होंने कहा कि ये तो मैं पहले से ही जानता था, इसीलिए आपको उनके यहां भेजा। हमारी दृष्टि में मन्त्री बनना बैठता ही नहीं है। वे बोले—उन्होंने इतना Casually लिया जैसे कुछ हुआ ही नहीं। ये देखकर मुझे और अधिक आश्चर्य हुआ। आपका पागलपन का निर्णय (decision) तो आश्चर्यजनक था ही, उससे ज्यादा इनका casual attitude मुझे लगा। हमने कहा कि ऐसे ही पागल तो भारतीय मज़दूर संघ में हैं। मनुष्य जब ध्येय पर स्थिर रहता है,

कोई आकर्षण, कोई इधर-उधर के मोह, प्रभावी नहीं हो सकते। त्रिविध क्षेत्रों में जाने वाले आदमी को एकदम 2nd Class Grade स्वयंसेवक मानना भी ठीक नहीं। दूसरे सवाल-जवाब करना भी ठीक नहीं। ज्यादा Latitude देना, ज्यादा publicity देना भी ठीक नहीं और जो जाने वाले हैं, उन्हें स्वयं उसमें अपने को समाने की कोशिश करनी चाहिए। दोनों का संयम हुआ तो त्रिविध पथ्य का पालन हो सकता है। परम पूजनीय श्री गुरुजी ने आश्वासनपूर्ण ढंग से कहा था कि जिस-जिस क्षेत्र में त्रिविध पथ्य का पालन हुआ, उस-उस क्षेत्र में कोई गड़बड़ नहीं होगी। जो-जो उलझनें पैदा होंगी, उनका निराकरण हो सकेगा। त्रिविध पथ्य का पालन नहीं हुआ तो उलझनें अवश्य पैदा होंगी, ये ध्यान में रखकर अपना व्यवहार करें।

संघ और समाज एकात्म है

यह विषय संघ के स्वयंसेवकों के सामने और विशेष रूप से पंजाब के स्वयंसेवकों के सामने कई बार रखा गया। परम पूजनीय गुरु जी ने रखा, संघ के अलग-अलग पदाधिकारियों ने रखा। लेकिन विषय का स्वरूप ऐसा है कि थोड़े दिन तक तो वो दिमाग में रहता है, बाद में बाहर के वायुमंडल के प्रभाव में आकर फिर से लोग यह विषय भूल जाते हैं और जहां पहले थे, वहीं आकर खड़े हो जाते हैं। परम पूजनीय गुरुजी ने कई बार बताया, संघ के माननीय अधिकारियों ने कई बार बताया, इतना ही नहीं, भारतीय जनसंघ के अखिल भारतीय महामंत्री और आगे चलकर उसके अध्यक्ष पंडित दीनदयाल जी ने भी यह कई बार बताया। कल मैंने यह सब कहा कि परिकल्पना की दृष्टि से राष्ट्रीय स्वयं-

संघ, सम्पूर्ण हिन्दू समाज के साथ एकात्म है। संघ और समाज इसमें कोई द्वैत नहीं है, दोनों एकरूप हैं। एक बार शीत शिविर था। पं० दीनदयाल जी उसमें गये थे। वहां व्यवस्था कुछ ऐसे रहती है कि अधिकारियों का हाथ धुलाने के लिए पानी की बाल्टी लेकर एक स्वयंसेवक खड़ा रहता है और हाथ पर पानी डालता है। एक स्वयंसेवक खड़ा था पानी हाथ पर डालने के लिए तो दीनदयाल जी जैसे ही आये, उसने कहा कि पण्डित जी, एक सवाल पूछना था—वह निसम्बर का महीना था, अगले लरवरी में चुनाव होने वाले थे—इस चुनाव में अपने कितने लोग चुनकर आयेंगे। पंडित जी ने पूछा कि तुम यह सवाल स्वयंसेवक के नाते पूछ रहे हो या जनसंघ के कार्यकर्ता के नाते ? वह देखता रहा। पण्डित जी ने दोहराया कि तुम्हारा सवाल स्वयंसेवक के नाते है या जनसंघ के कार्यकर्ता के नाते ? उसने कहा कि बात तो एक ही है। दीनदयाल जी ने कहा कि ऐसा नहीं है। स्वयंसेवक के नाते यदि तुम पूछते हो तो तुम्हारे सवाल का जवाब है कि जो भी चुनकर आयेंगे वो सब हमारे हैं, सब हमारे ही चुनकर आने वाले हैं। क्योंकि हम सारा समाज हैं, संघ के नाते। लेकिन हां, जनसंघ के नाते कहोगे तो 30 से 35 तक सीटें आ सकती हैं। यह पण्डित जी का जवाब था।

एक भाग सम्पूर्ण के समान नहीं हो सकबा

स्पष्ट कल्पना, A part cannot equated with the whole। जैसे पार्टी है, पार्टी से निकला हुआ पार्ट शब्द है। यानि Whole, सम्पूर्ण और पार्टी यानि उसका एक अंश। तो अंश के साथ सम्पूर्ण को equate करना (बराबरी पर रखना) यह ठीक नहीं है। बाहर के लोगों में इसका स्पष्ट विचार नहीं है। यह

आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु अपने लोग जब भूल जाते हैं तो बड़ा आश्चर्य होता है। मुझे स्मरण आता है कि मैं नागपुर से दिल्ली अपने संघ के माननीय बड़े अधिकारी के साथ ही आया। वे बोलने में बहुत रिज़र्व (Reserve) रहते थे। अब उस दिन जैसे ही हम नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर उतरे तो उन्होंने कहा कि भई! तुमको कहां जाना है? मैंने कहा– झण्डेवाला जा रहा हूं। तो उन्होंने कहा कि मेरे साथ ही चलो। मैंने कहा कि चलो टैक्सी लें। अब उनकी आदत थी कि वे टैक्सी ड्राइवर की बगल में ही बैठते थे, मैं पीछे बैठ गया, वे सामने बैठे तो टैक्सी ड्राइवर ने पूछा कि साहब, कहां जाना है? वे बोले—नाज़ टाकीज़ के सामने जो एक बड़ा दफ्तर है, वहां जाना है। तो टैक्सी वाले ने कहा कि जनसंघ के दफ्तर में? बोले—नहीं भई! वह आर. एस. एस. का दफ्तर है। टैक्सी वाले ने कहा कि नहीं, वह तो जनसंघ का दफ्तर है। अब टैक्सी चल रही थी। अब नाज़ टाकीज़ तक कोई ज़्यादा फासला तो है नहीं। हमारे माननीय अधिकारी हमेशा तो बहुत ही रिज़र्व रहते थे लेकिन उस दिन उनको क्या आवेश आया पता नहीं। वे उसको समझाने लगे—अरे भई! तुम समझते नहीं हो, समझने वाली बात है। संघ अलग बात है, जन-संघ अलग बात है, जनसंघ का दफ्तर अजमेरी गेट पर है और जहां हम लोग जा रहे हैं नाज़ टाकीज़ के सामने, वह संघ का दफ्तर है। वो तब तक उसे समझाने में लगे रहे जब तक नाज़ टाकीज़ का मोड़ नहीं आया। इनका बोलना बन्द हुआ। कार का व्हील घुमाते हुए वह टैक्सी वाला सारी explacation सुनने के बाद कहता है कि हां साहब, एक ही बात है। मुझे लगा कि यह टैक्सी वाला, इसको क्या समझ में आया होगा।

संघशः और व्यक्तिशः में अन्तर

लेकिन संघ का विषय जिन्होंने सौ बार सुना होगा, ऐसे हमारे स्वयंसेवक टैक्सी वाले से अलग नहीं हैं। इसका अनुभव हमें पिछले दिनों में आ रहा है। भारतीय मज़दूर संघ में संघ के प्राचीन स्वयंसेवक काफी हैं इसीलिए ठीक चल रहा है। एक जगह हम गए, ऐसे ही चाय पर बातचीत चल रही थी। तो भारतीय मज़दूर संघ का एक कार्यकर्ता, जो प्राचीन स्वयंसेवक था, उसके मन में कुछ सुझाव था। वह कहता है कि ठेंगड़ी जी ! अभी 4 राज्यों में अपनी सरकार आ गई है। वह और बोलने वाला था तो मैंने कहा—भैया ! ज़रा रुक जाओ। भारतीय मज़दूर संघ की सरकार आ गई है क्या ? नहीं-नहीं। मैंने कहा कि आर. एस. एस. की सरकार आ गई है क्या ? वह बोला—नहीं-नहीं। भाजपा की सरकार है न ! तो ऐसा कहो कि चार राज्यों में भाजपा की सरकारें आ गई हैं। हां, यह बात अलग है कि भाजपा अपने स्वयंसेवकों के द्वारा चलाई गई है। वह भी स्वयंसेवक हैं, हम भी स्वयंसेवक हैं इसलिए उनके बारे में स्वयंसेवक के नाते, व्यक्तिगत रूप से आत्मीयता है। यह व्यक्तिगत रूप से है और उसी दृष्टि से चुनाव के समय लोगों ने भाजपा का काम किया। ठीक किया है इसमें कोई आपत्ति की बात नहीं है। यह आप सब ने व्यक्तिगत रूप में किया है। लेकिन सरकार जो आई है वह न भारतीय मज़दूर संघ की है, न आर. एस. एस. की है, वह भाजपा की है। तब इतना कहें कि इस सरकार में अपने निकटस्थ लोग हैं, ऐसी सरकार है। ऐसा ज्यादा से ज्यादा कह सकते हैं। लेकिन सत्ता आर. एस. एस. या भारतीय मज़दूर संघ की नहीं। पर उसकी

शक्ल से लगता था कि उसको कुछ समझ में नहीं आ रहा है—यह व्यक्तिगत बात है। बाद में उन्होंने पूछा—ठेंगड़ी जी ! ये सच्ची बात है, आप जो यह व्यक्तिशः कह रहे हैं। हमने व्यक्तिशः भाजपा का काम किया है चुनाव में। संघ ने काम किया है। दोनों में अन्तर क्या है ? मैंने कहा—भई, व्यक्तिगत एक बात है, संघशः एक अलग बात है।

अब उसको उदाहरण दिया। परमपूजनीय डाक्टर जी ने 1931 में जंगल सत्याग्रह में हिस्सा लिया। कांग्रेस के जंगल सत्याग्रह में हिस्सा लेने के लिए परमपूजनीय डाक्टर जी जाने वाले थे। यह निश्चित है कि किसी भी राजनैतिक काम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नहीं रहेगा। जंगल सत्याग्रह राजनैतिक कार्य था ! डाक्टर जी ने जाना भी अवश्य था। और डाक्टर जी सरसंघ-चालक थे। अब सरसंघचालक रहते हुए वे राजनीति के सत्याग्रह में हिस्सा लेते और फिर कहते कि हम राजनीतिक नहीं, तो लोगों को समझाना कठिन है। वास्तव में लोगों को समझना चाहिए कि डाक्टर हेडगेवार व्यक्तिगत रूप से गये, सरसंघचालक के नाते नहीं गये थे। यह वास्तव में सिद्धान्ततः समझना भी कठिनाई की बात नहीं। परन्तु सामान्य आदमी समझ नहीं सकता है तो इस दृष्टि से परमपूजनीय डाक्टर जी ने सरसंघचालक पद छोड़ दिया। पता नहीं आप में से कितने लोगों को मालूम होगा कि उन्होंने सरसंघचालक की सीट छोड़ दी। अपनी जगह डाक्टर पराजपे को Active कार्यकारी सरसंघचालक के नाते घोषित कर दिया, स्वयं सरसंघचालक पद से मुक्त हो गए और अपने संघ के ही मा० अप्पा जी जोशी और बाकी लोग उनको भी अपने-अपने

पदों से मुक्त करते हुए व्यक्तिगत रूप में, सभी ने यवतमाल में जंगल सत्याग्रह किया। अब जो मोटी तौर पर बात समझते हैं वे कहेंगे कि इसमें फर्क क्या है ? व्यक्तिश: आता है, संघश: आता है, आखिर वह सरसंघचालक है ही। सरसंघचालक पद से छुट्टी लेने की क्या आवश्यकता थी ? ऐसा नहीं है, ये दोनों बातें अलग-अलग हैं। व्यक्तिश: और संघश: दोनों अलग बातें हैं।

भाग्यनगर सत्याग्रह। भाग्यनगर यानि हैदराबाद। आर्य-समाज और हिन्दू महासभा के नेतृत्व में भाग्यनगर सत्याग्रह हुआ। संघ ने सत्याग्रह में हिस्सा नहीं लिया, लेकिन संघ के कार्यकर्ता, संघ के स्वयंसेवक, हिन्दुत्व की प्रखर भावना से जो ज्वलंत हैं, ऐसे लोग चुपचाप बैठे रहें, ऐसा सभव नहीं है। व्यक्तिगत रूप से कई लोगों की इच्छा हुई कि सत्याग्रह में भाग लें। संघ ने नहीं कहा। इच्छा हुई तो डाक्टर जी के पास आए और उनसे कहा कि हम जाना चाहते हैं। उनमें श्री भैय्या जी दाणी भी थे। और भी सैकड़ों लोग थे। डाक्टर जी ने कहा—ठीक है ! तुम्हारी इच्छा है, यह तुम्हारा व्यक्तिगत मामला है। कितने ही लोगों ने हिस्सा लिया। अब जो पालिटिकल स्टाइल होती है कि हमारे लोगों ने हिस्सा लिया, हमारा credit है, अपने credit का catalogue बनाना, यह political style है। हमने यह तीर मारा है, ये शेर मारा है, catalogue बनायेंगे। सघ के लिए तो यह मौका था। सैंकड़ों स्वयंसेवक भाग्यनगर सत्याग्रह में गये थे। संघ के रूप में नहीं, व्यक्तिगत रूप में। अब जहां संघ credit लेने के लिए तैयार नहीं था, वहां सत्याग्रह चलाने वाली हिन्दू महासभा के नेता अपने सत्याग्रह को बड़ा दिखाने के लिए, संघ इसमें शामिल है, यह बोलना चाहते थे।

उनका एक समाचारपत्र निकलता था, उसमें लिखा, सैंकड़ों लोगों को भाग्यनगर सत्याग्रह में भेजा है। डाक्टर साहब ने कहा कि हमने किसी को नहीं भेजा, संघ इस मामले में तटस्थ है, सब व्यक्तिगत रूप में गये हैं। लेकिन संघ इसमें है, यह बताना हिन्दु-सभा के लोगों के लिए ज्यादा प्रतिष्ठा का विषय था इसलिए उन्होंने अपने समाचारपत्र में लिखा कि इसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी शामिल हुआ। उस समय प. पू. डाक्टर जी स्वास्थ्य-सुधार के लिए राजगिरी में थे, वहां ये उनके पढ़ने में आया तो उन्होंने वहां से पत्र लिखा कि रा. स्व. संघ इस सत्याग्रह में शामिल नहीं है। कट्टर हिन्दुत्व पर निष्ठा होने के कारण, व्यक्तिगत (Capacity) रूप से हमारे कई स्वयंसेवक सत्याग्रह में गए हैं। वे व्यक्तिगत (Capacity) रूप से गए, संघ उसमें नहीं है। आपने जो अपने समाचारपत्र में छापा है, इसके कारण संघ के विषय में गलतफहमी हो सकती है इसलिए मेरा यह पत्र आप अपने समाचारपत्र के अगले अंक (Issue) में छाप दीजिए। अगर आप छापने से इंकार करेंगे तो मैं अलग स्टेटमैंट दूँगा कि आपने जो लिखा है वह झूठ है। अब यह पागलपन है कि नहीं कि जहां credit मिल सकता था, वह भी छोड़ दिया। व्यक्तिगत capacity में तो ठीक है, संघशः नहीं।

संघ संस्कारित कार्यकर्ता खड़े करता है

संघ केवल संगठन करता है और कुछ नहीं करता। जैसा मैंने कल कहा कि Division of Labour हो गया है, श्रम विभाजन हो गया है कि संघ ने संस्कारित स्वयंसेवक का निर्माण करना है और संघ से प्रेरणा और संस्कार प्राप्त किए हुए स्वयं-सेवकों ने, राष्ट्रजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करते हुए, वहां

कार्यों की रचना और विचारों का विकास करना। यह एक division of labour (श्रम विभाजन) हुआ, उसके अन्तगत हम सब लोग काम कर रहे हैं। लेकिन यह रचना समझना बड़ा कठिन है। इसका कारण है संघ की अनोखी रचना। प. पू. डाक्टर जी की प्रतिभा का यह एक विलक्षण विकास है। यह समझना कल्पना के परे है। क्योंकि आदमी जो कुछ देखता है, अनुभव करता है, उसी के आधार पर जो पुरानी चीज़ उसने समझी है, अनुभव की है, उसी के आधार पर वह नई चीज़ों का स्वरूप समझने का प्रयास करता है। जैसे हम कहते हैं भगवान के चरणकमल। अब भगवान के चरण तो देखे नहीं, कमल देखा है, तो हम समझते हैं कि कमल में सुगन्धी है, भगवान के चरणों में भी सुगन्धी होगी। कमल कोमल है, इसलिए भगवान के चरण भी कोमल होंगे। यह आकर्षक है, वे भी आकर्षक होंगे। माने, कमल को जानकर, भगवान के चरण जो देखे नहीं, उसकी हम कल्पना करते हैं। इसी तरह संघ कार्य है। एक अलंकार ऐसा है जिसका नाम है अनन्वय, और उसका उदाहरण दिया गया है—

"गगनं गगनाकारं, सागरः सागरोपमा,
रामरावणयोर युद्धे रामरावणयोरिव।"

भाव, यह गगन कैसा है, आकाश कैसा है, गगन का आकार कैसा है, आकाश के आकार जैसा है। सागर कैसा है, जिसको सागर की ही उपमा दी जा सकती है, और कोई उपमा दी नहीं जा सकती और राम रावण युद्ध कितना भीषण हुआ, जितना राम रावण युद्ध हो सकता है। ऐसा कवि का कहना है। अब इससे क्या अंदाज़ा लगाया जा सकता है? अब यह भी ठीक है कि गगन गगन के आकार का है, आकाश आकाश के आकार का है, उसको क्या कहें कि हमारे घर के जैसा है, कमरे के जैसा है, महासागर महासागर के जैसा है। किन्तु इस

पर तो सागर के बारे में, आकाश के बारे में कैसी कल्पना की जा सकती है? राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ – यह अनन्वय अलंकार है। संघ तो संघ के जैसा है, इसकी और कोई उपमा नहीं है।

वास्तब में अभूतपूर्व है परमपूजनीय डाक्टर जी की प्रतिभा का यह एक विलक्षण विकास है। संघ संघ के जैसा है तो बाहर का आदमी उसे कैसे समझ सकेगा। एकदम समझना मुश्किल हो जाता है। यह मूल कल्पना क्या है इसे हमें समझना चाहिए। एक बार समझने के बाद उसको न भूलने की कोशिश करनी चाहिए। और भूल गए तो फिर से उसका स्मरण करना चाहिए।

संघ और अन्य संस्थाएं

बाकी जो संस्थाएं स्वयंसेवक चला रहे हैं, उनके साथ कैसा क्या सम्बन्ध है? क्या परस्पर रचना है? vis-a-vis क्या है, यह ध्यान में आ सकता है। लेकिन अब बार-बार तो सुनाया नहीं जा सकता, पढ़ा नहीं जा सकता। लेकिन मेरा एक सुझाव है, विनम्र प्रार्थना है कि संघ और अन्य संगठनों के विषय में पूरा व्यवस्थित वर्णन एक जगह आया है। भगवान ने किया है। गीता का श्लोक है, परब्रह्म का वर्णन किया गया है, परब्रह्म एवं अन्य सृष्टि जो है इसके विषय में आया है। वर्णन ऐसा है—

"सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितं,
असक्तं सर्वभूश्चैव निर्गुणंगुणभोक्तिन:।"

भाव, ये परब्रह्म कैसा है, सभी इन्द्रियों के गुणों का आभास उसमें होता है, किन्तु परब्रह्म की कोई इन्द्रिय नहीं है लेकिन परब्रह्म में सभी इन्द्रियों के गुणों का आभास होता है। इसके लिए, इसके विषय में, किसी के भी मन में आसक्ति नहीं है, attachment नहीं है किन्तु सभी का भरण-पोषण करता है, सभी को पालक के जैसा देखता है, किसी के विषय में attach-

ment नहीं है। इसमें हमारे कार्यकर्ताओं ने अच्छा शब्द निकाला —unattached involvement (अनासक्त) किसी के विषय में आसक्ति नहीं है। परमपूजनीय श्री गुरुजी ने कई बार कहा कि हमारे स्वयंसेवकों ने संस्थायें निर्माण की हैं। हर एक संस्था एक-एक उद्देश्य (purpose) लेकर निर्माण की है किन्तु हमारे मन में कोई आसक्ति नहीं है। जो संस्था स्वयंसेवक चला रहे हैं वो ठीक ढंग से चला रहे हैं, ऐसे लगा तो उसके बारे हमारी धारणा अच्छी रहेगी और यदि ऐसा लगा कि यह संस्था गलत दिशा में जा रही है तो हमारे मन में कोई आसक्ति नहीं। हम हर संस्था को खांड की बनी बंसी समझते हैं। जब तक वो बजती है तब तक बजायेंगे और जब बजना बन्द हो जायेगी तो उसको तोड़ कर खा डालेंगे। कोई आसक्ति हमारे मन में किसी संस्था के विषय में नहीं है, ऐसा प. पू, श्री गुरुजी ने कहा था। कोई आसक्ति न होते हुए, सभी का भरण-पोषण करता है और जिसमें कोई गुण नहीं है, कोई रंग (colour) नहीं है, गुणभुक्तं च— सभी गुणों का वो भोगी होता है। मैं समझता हूं कि परब्रह्म और सृष्टि का यह जो वर्णन किया गया है वही, संघ और दूसरे हमारे जो स्वयंसेवक संस्थायें चला रहे हैं, इनके विषय में बराबर विवरण मिलता है। जब हम कभी भूल जाते हैं तो थोड़ा ये श्लोक देखेंगे—भगवद्‌गीता का। फिर से स्मरण हो जायेगा, exact वर्णन है।

आसक्ति के दो प्रकार

बहुत बार यह आता है कि संघ द्वारा चलाई गई संस्थायें। संघ ने कोई संस्था नहीं चलाई। संघ के लोगों, स्वयंसेवकों ने चलाई हैं संस्थायें। यह स्पष्ट भावना है। किसी भी तरह से

आसक्ति न रखते हुए विभिन्न संस्थाओं में काम करने वाले सभी स्वयंसेवकों का यह भरण-पोषण परब्रह्म करेगा। जगह-जगह कार्यकर्ता दिए जाते हैं। जगह-जगह कार्य किए जाते हैं किन्तु ऐसी आसक्ति नहीं है। आसक्ति के दो उदाहरण ध्यान में रखिये कि धृतराष्ट्र की अपने बेटों के बारे में आसक्ति है— मेरे लड़के हैं, गलत या ठीक कुछ भी करें मैं उनका समर्थन करूंगा। और दूसरा भगवान कृष्ण का उदाहरण कि जब अपने ही कुल के यदुवंश के लोग समाजद्रोही हो गये तो स्वयं अपने सामने, अपने सम्पूर्ण वंश का विनाश कराने के बाद ही उन्होंने निज धाम जाना स्वीकार किया। कोई लिहाज़ नहीं, कोई आसक्ति नहीं। समाजद्रोही हैं तो इसका हम विनाश करेंगे। भले ही हमारे वंश के हैं, हमारे रिश्तेदार हों। इतनी कट्टरता थी भगवान कृष्ण की। और समाजद्रोही होने पर भी आपत्ति क्या है, आखिर वे अपने ही हैं, यह धृतराष्ट्र की प्रवृत्ति। ये आसक्ति के दो अलग-अलग प्रकार हैं। निरासक्ति और आसक्ति तो आसक्ति किसी के विषय में नहीं हैं। सभी का भरण-पोषण कर रहा है और यदि यह हम ध्यान में रखते हैं तो फिर संघ की मूल योजना क्या है, यह हम समझ सकते हैं। जैसा मैंने कहा कि यह अनोखी बात होने के कारण समझने में कठिनाई है। लेकिन एक बार समझ में आ गया तो सभी व्यवहार कैसे चलते हैं, कैसे चलाने चाहिएं, ध्यान में आ जाता है।

संघ एक पारिवारिक संगठन है

संघ का स्वरूप क्या है? दो बातें हम ध्यान में रखें कि हर एक संस्था part of the whole है। संघ यह whole है। संघ यह एक सम्पूर्ण परिवार जीवन है। एक-एक संस्था परिवार

जीवन का एक-एक aspect है, एक-एक पहलू है, एक-एक अंग है। मुझे स्मरण आता है कि हम पहली बार मद्रास गये थे। चिचंलकर जी, हमारे प्रमुख थे। हमको बताया गया था कि वहां एक वी. राजगोपालाचारी नाम के एडवोकेट हैं, वे अमुक जगह रहते हैं, उनको अपने नज़दीक लाना है, उनको पत्र गया था। हम 3-4 प्रचारक उनके यहां गये। उन्होंने कहा—हमारे यहां ठहरिये। अब मैं तो जूनियर था, तीन-चार मेरे साथ सीनियर थे तो हमने यह तय किया कि रात के भोजन के बाद संघ के बारे में वे हमारे साथ बात करेंगे। रात में गये। बातचीत होने लगी। मैं तो कम बोलता था, बाकी जो सीनियर प्रचारक थे, वे ज्यादा बोल रहे थे। बहुत समझाने का प्रयास किया कि संघ ऐसा है। तीन-चार घण्टे हो गये, आखिर सब लोग थक गये। उन्होंने कहा कि भई ! मैं तो convince नहीं हुआ। वह पूछने लगे कि तुम्हारा यह संघ political body है क्या ? नहीं। आर्थिक संस्था है क्या ? नहीं। सामाजिक संस्था है क्या ? नहीं। तो फिर है क्या ? अब क्या जवाब दें। तो उन्होंने कहा कि भई ऐसा है कि मैं तुम्हारे गुरुजी के बारे में जानता हूं। वे श्रेष्ठ पुरुष यदि रा. स्व. संघ में हैं तो ये कोई अच्छी चीज़ होगी, इतना मैं अंदाज़ा लगा सकता हूं। तो मेरी इच्छा यह है कि वो ज़रा मुझे समझायें कि संघ क्या है ? तो बाद में जब हम लोग नागपुर गये तो प. पू. गुरुजी को बताया। ओ. टी. सी. तब चल रहे थे, परमपूजनीय श्री गुरुजी ने कुछ दिन मद्रास में रुकना था। तो गुरुजी ने कहा कि मेरा एक पत्र ले जायें। श्री गुरुजी के सारे पत्र खुले ही रहते थे। उन्होंने पत्र दिया। हम 3-4 प्रचारक पत्र लेकर गये। हमें बड़ी निराशा हुई पत्र देखकर। हमने सोचा था कि गुरुजी कुछ विस्तृत विवेचन करेंगे कि रा. स्व. संघ क्या है, वगैरा

लेकिन उसमें कुछ नहीं। पहले पैरे में था कि अब ये संघ शिक्षा वर्ग हो गया, इतनी संख्या हो गई। अलग-अलग प्रदेशों का प्रतिनिधित्व था, ये कार्यक्रम हुए, बड़ा आनन्द आया। दूसरे में था कि आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा, ऐसा मैं समझता हूं क्योंकि इन्होंने बताया है कि आपका शरीर स्वस्थ है (I hope this will find you in good health......) और आखिर में था कि अपना जो यह रा. स्व. संघ है, आप जानते ही हैं कि This is a Hindu Family Organisation. The difference lies only in degree not in Type. माने यह हिन्दुओं का पारिवारिक संगठन है लेकिन परिवार और संगठन में यदि कुछ फर्क होगा तो वह डिग्री का फर्क है, मात्रा का फर्क है। मानो परिवार छोटा होगा, इसकी मात्रा बड़ी है लेकिन टाईप का फर्क नहीं, Type वही है एक परिवार। हम चारों निराश हो गये, हमने कहा कि विस्तृत विवेचन करना चाहिए था, अच्छा explain करना चाहिए था, कुछ किया ही नहीं। फिर उनके यहां गये, भोजन हुआ। भोजन के पहले हमने पत्र दिया था। भोजन के बाद जब हम उठे तो उनके आफिस में आ गये। उन्होंने कहा कि अब मैं संघ का स्वयंसेवक बनता हूं। मैं समझ गया कि संघ क्या है? हमको आश्चर्य हुआ कि एक-दो वाक्य लिखे। हम तीन-चार घण्टे उनको समझाते रहे, उनकी समझ में नहीं आया। एक वाक्य में उन्होंने क्या समझा होगा। किन्तु वे परिपक्व आदमी थे जब पारिवारिक संगठन (Family Organisation) कहा गया और ये कहा गया कि difference lies only in degree and not in type. उन्होंने कहा कि मैं समझ गया। तो वास्तव में संघ का स्वरूप पारिवारिक संगठन यही है। हिन्दुओं का पारिवारिक संगठन। लेकिन अब ये किसी के पल्ले नहीं

पड़ता। क्योंकि जैसे मैंने कहा कि ऐसा कहने पर बहुत बार जब किसी के पल्ले ही नहीं पड़ता तो कुछ न कुछ बोलना पड़ता है इसलिए हम अब सांस्कृतिक सगठन शब्द लाये। सांस्कृतिक संगठन इसलिए लाये कि लोग ये बात समझ नहीं पाते थे। ये पारिवारिक संगठन क्या है ? विशेष रूप से ये लोगों के दिमाग में था कि ये राजनीतिक तो नहीं है, ये आर्थिक तो नहीं है तो कुछ शब्द देना था तो सांस्कृतिक दे दिया। वास्तव में exact शब्द यदि कुछ होगा तो पारिवारिक संगठन, यही एक exact शब्द है। सांस्कृतिक संगठन negatively यह प्रगट करने के लिए कि हम राजनैतिक नहीं हैं, आर्थिक नहीं हैं इसलिए निरुपद्रवी शब्द है। सांस्कृतिक शब्द का हमने प्रयोग किया है। लेकिन वास्तव में यह हिन्दुओं का पारिवारिक संगठन है।

संघ-समाज की एकरूपता

पारिवारिक का क्या adjective होता है ज़रा बताइये। सामाजिक संस्था है, उसका adjective है सामाजिक। भारतीय मज़दूर संघ है। आर्थिक संस्था है। विश्व हिन्दू परिषद् है, धार्मिक संस्था है। हर एक का एक-एक adjective हैं कि नहीं ? विद्या-भारती है, शैक्षणिक संस्था है। अब परिवार क्या है ? परिवार शैक्षणिक संस्था है क्या ? राजनैतिक संगठन है क्या परिवार ? आर्थिक संगठन है क्या ? परिवार का कोई विशेषण नहीं। परिवार में सब कुछ है और कुछ भी नहीं। सारा परिवार राजनैतिक भी होगा, सारा परिवार आर्थिक भी होगा, सामाजिक भी होगा, कोई कुछ न कुछ काम करता होगा। तो संघ के लिए adjective है ही नहीं। बाकी हर संस्था के लिए एक-एक adjective है। इसलिए संघ यह एक सम्पूर्ण परिवार है, पारिवारिक जीवन है।

अलग-अलग संस्थायें जो स्वयंसेवक चला रहे हैं वे सब परिवार जीवन के एक-एक पहलू को लेकर काम कर रहे हैं। इतना सारा जब हम समझ जायेंगे तो फिर परस्पर सम्बन्ध सामने आयेंगे। इन सब का आधार जो हिन्दू समाज-रचना की आधारभूत संकल्पना है, वही पारिवारिक संकल्पना ही संघ का आधार है। यह हिन्दुओं की एक विशेषता है परिवार। हम परिवार हैं, सम्पूर्ण राष्ट्र एक परिवार है। सम्पूर्ण समाज एक परिवार है। हरेक संस्था, यह एक परिवार हैं। Circle within circle जिसको कहा गया है। बड़ा परिवार, उसके अन्तर्गत एक छोटा परिवार, उसके अन्तर्गत एक और छोटा परिवार। लेकिन मूल संकल्पना जो है, बुनियादी संकल्पना जो है वह है परिवार की। संघ एक परिवार है, विभिन्न संस्थायें भी अपने आप में एक परिवार हैं और सम्पूर्ण समाज या राष्ट्र जो एक परिवार है, उसके अन्तर्गत ये सारे परिवार हैं। बढ़ते-बढ़ते सभी ने इतना बढ़ना है कि फिर संघ और समाज एकरूप हो जायें। समाज संघ में विलीन हो जाए और समाज संघमय बन जाये। संघ और समाज का द्वैत समाप्त हो जाये, यह अन्तिम अवस्था है। परिवार यह संकल्पना है और इसी संकल्पना को लेकर संघ का कार्य चलता है। विभिन्न संस्थाओं का कार्य भी चलना चाहिए और विभिन्न संस्थाओं के और संघ के सम्बन्ध भी परिवार कल्पना पर आधारित होने चाहिएं।

अनुशासन माने क्या ?

यह परिवार-कल्पना क्या है? हम परिवार में रहते हैं, परिवार में ठीक ढंग से चलते हैं तो भी परिवार कल्पना की

विशेषता ये ध्यान में नहीं है और इसके कारण प्रत्यक्ष कार्य में कभी-कभी असुविधा हो रही है, ऐसा लगता है। संघ के ही कार्य में और संघ और विभिन्न संस्थाओं के सम्बन्धों की दृष्टि से भी कभी-कभी ऐसा लगता है कि कुछ असुविधा हो रही है। अब पहली तो बात है कि हर संस्था में अनुशासन होना चाहिए। अनुशासन का भी महत्व है। अब अनुशासन शब्द कैसे आया? मिलट्री organisation है क्या? लेकिन यहां अनुशासन का आधार हमेशा यह माना गया कि समझदारी के स्तर को ऊपर उठाना। मिलट्री डिस्पिलिन नहीं है। और आपको यह आश्चर्य होगा कि discipline यह शब्द, अध्यात्म से आया है। Disciple यह एक शब्द है। Disciple यानि शिष्य। Disciple का जो भाव होता है, उसको discipline कहते हैं। माने शिष्यत्व का जो भाव होता है, उसको discipline कहते हैं। समझदारी के स्तर को ऊंचा उठाना। अब पहला शिविर था शीत-शिविर। अब कल्पना तो यही थी कि सब लोगों को इकट्ठे भोजन करना चाहिए। अब हमारे यहां जात-पात तो कोई मानता नहीं, लेकिन नये-नये हमारे बच्छराज जी व्यास आये तो अब उन्होंने कहा कि मेरा कैसे होगा? मैं तो कट्टरपंथी हूं, अन्य लोगों के साथ खा नहीं सकता। कार्यकर्ताओं ने कहा कि फिर कैसे होगा? यहां तो सब के साथ इकट्ठा बैठकर खाना पड़ेगा। डाक्टर जी के पास गये। डाक्टर जी ने कहा कि उसको आने दो। चाहे उसको कहो कि तुम ज़रा अलग से आटा, दाल, चावल वगैरा लेकर अलग से पका सकते हो। हालांकि हमारी पद्धति में यह बैठता नहीं। लेकिन ठीक है पहला साल है उसका, उसको उसी तरह करने दो। शिविर में आये बच्छराज जी। अब सब लोग खाने के लिए बैठे।

इन्होंने अपनी अलग खिचड़ी पकाई थी, वो अलग बैठे। उधर देख रहे थे कि लोग खाना खाते हुए आनन्द से हंसी-मज़ाक कर रहे थे। ये अपने अलग से खा रहे थे। अब दो-तीन दिन यह सब चला। तो उन्हें भी लगा कि अलग पकाकर खाना, यह कार्यक्रम ठीक नहीं है। और अगले साल शिविर के पहले ही उन्होंने पूजनीय बाला साहब को कहा, जो उनके कार्यवाह थे कि मैं अब अलग से नहीं, सबके साथ मिलकर ही खाऊंगा। याने उनको यह बात discipline से नहीं समझाई। हमारे Article Number 33 में लिखा है, ऐसी बात नहीं कही। पर अनुभव के आधार पर वह समझ गये, समझदारी का स्तर ऊंचा करके। हिन्दू कल्पना जो है discipline की। और पाश्चात्य कल्पना और Constitution की कल्पना अलग-अलग है।

अनुशासन की हिन्दू कल्पना

अब हिन्दू कल्पना देखिये। गीता का प्रारम्भ। अर्जुन ने कहा कृष्ण से—

"यत् श्रेयं स्यात् निश्चितं ब्रूहि तन्मे।
शिष्यस्तेऽहं शाधि मात्वां प्रपन्नम् ॥"

मैं तुम्हारा शिष्य हूं, श्रेयस् क्या है, लड़ना या नहीं लड़ना, इनमें से कौन-सी बात श्रेय देने वाली है, यह मुझे बताओ। लड़ना या नहीं लड़ना, इसके बारे में 'निश्चितं' जो श्रेयस ज्ञान है, मुझे निश्चित बताओ। लोकमत मत बताओ। You may give definite directive whether to fight or not to fight ? शिष्य यह पूछ रहा है कि मुझे definite directive दीजिए। भगवान उसे यह भी कह सकते थे कि भई, तुम्हें लड़ना है तो लड़ो। उन्होंने ऐसा नहीं किया। उसके मन में जितने सन्देह थे, जिन सन्देहों के कारण यह doubts, यह प्रश्न

निर्माण हुआ कि लड़ना या नहीं लड़ना। एक-एक सन्देह का उत्तर देना शुरू किया। लेकिन क्या हुआ ? एक सन्देह का स्पष्टीकरण करते तो इस स्पष्टीकरण में से दूसरा प्रश्न निकलता। दूसरे सन्देह का स्पष्टीकरण करते तो उसमें से तीसरा प्रश्न निकलता। होते-होते अठारह अध्याय तक आ गये। और वहां आने के बाद फिर उन्होंने कहा कि जितना बोलना था, वह सारा मैंने बोला। फिर अर्जुन ने कहा कि अब तो बताओ कि लड़ना है या नहीं लड़ना। तो भगवान ने कहा कि अभी तक जितना मैंने कहा है— "विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू" याने विचार करते हुए, सोच करते हुए—अशेषेण यानि सभी बातों का, जितना मैंने कहा उसमें से कोई भी बात न छोड़ते हुए, सभी बातों का सम्पूर्ण विचार करते हुए जो तुम्हारी इच्छा हो वह करो। यह Hindu Style of Discipline है, लेकिन यह बात बहुत कठिन है। समझदारी का स्तर ऊंचा करने के लिए 18 अध्याय में गीता बताई गई। अब हर समय तो 18 अध्याय की गीता भी नहीं बताई जा सकती। फिर गीता बताने वाले कृष्ण भी यहां कोई नहीं और प्रश्न पूछने वाला अर्जुन भी कोई नहीं। तो जैसे के तैसे तो उदाहरण लागू नहीं हो सकता। लेकिन आदर्श के नाते हमारे सामने है कि Discipline का मतलब है समझदारी के स्तर को ऊंचा करना।

परिवार संकल्पना

आजकल तो लोगों को Constitution (संविधान) का ही ज्यादा अभ्यास है। हर संस्था में Constitution (संविधान) पहले बन जाता है और Constitution (संविधान) की एक-एक

धारा का उपयोग उस संस्था को तोड़ने के लिए किया जाता रहा है। आपस में झगड़े के लिए किया जाता है। हमारे परिवार में तो कोई Constitution नहीं है। हमारे परिवार हज़ारों साल से चलते आये हैं। आपने किसी परिवार के रसोईघर के दरवाज़े पर लिखा देखा है कि परिवार का संविधान (Constitution of the Family), पिता के अधिकार और कर्तव्य ये होंगे, माता के कर्तव्य और अधिकार ये होंगे, लड़के के कर्तव्य और अधिकार ये होंगे। कहीं रसोईघर के दरवाज़े पर नहीं लिखा, तो भी सारे परिवार ठीक चल रहे हैं। जिन्होंने दफ्तर में जाना हो वो दफ्तर में जाता है, जिन्होंने रसोई बनाना, वो रसोई बनाते हैं। ऐसा नहीं होता कि रसोई बनाने वाले दफ्तर में पहुंच गये और दफ्तर वाले रसोईघर में पहुंच गये।

इस परिवार की प्रकृति को यदि हम समझ लेंगे तो फिर परिवार चलाना संभव होगा। केवल Constitution नियम, Rules & Regulations, Code of Conduct, ये जो फैशनेबल बातें हैं, इसी के आधार पर चलेंगे तो परिवार नहीं चलेगा। अब इसके कारण जो केवल Constitutional mind लेकर काम करते हैं, वे इसका विचार अलग ढंग से करते हैं। पारिवारिक मन वाले इसका विचार अलग ढंग से करते हैं। एक शाखा है, कोई प्रमुख अधिकारी है, किसी विषय पर उसने एक निर्णय लिया है यदि कोई सैद्धान्तिक विषय होगा तो अलग बात है। लेकिन कोई मामूली विषय है, जिसके एक से अधिक मत भी हो सकते हैं। अब यदि हम ऐसा सोचें कि मुझे जो लगता है, वही सही है, वह सब को मानना ही चाहिए और जितने विपरीत बातें रखने वाले हैं वह बिल्कुल निकम्मे आदमी हैं, अच्छे स्वयंसेवक नहीं हैं, ऐसा ही हमने मान लिया तो परिवार चल सकता है क्या ? परिवार के

लिए पारिवारिक मन की आवश्यकता है। कुछ लोगों का ऐसा लड़कपन का आग्रह रहता है कि सभी एक ध्येय के पथ के राही हैं तो फिर सभी का एक ही विषय पर एक ही मत होना चाहिए। क्योंकि सभी एक संगठन के हैं, एक ही ध्येय के हैं, एक ही पथ के राही हैं तो एक विषय पर एक मत क्यों नहीं होना चाहिए? ये हम जानते हैं कि ऐसा नहीं है। अंग्रेज़ी में एक शब्द है—Regimentation, उसकी हिन्दी मैं नहीं जानता। हमारे discipline में नहीं है। परमपूज्य श्री गुरुजी का शब्द है। रा. स्व. संघ में "लचीला अनुशासन" (Elastic discipline) बहुत महत्व का शब्द है। पारिवारिक संकल्पना होने के कारण परिवार में जिस तरह लचीला अनुशासन होता है—Elastic discipline, वैसे हमारे यहां है। Elastic discipline में मतभेद के लिए जगह है, मनभेद नहीं है।

मतभिन्नता और मनभिन्नता

ये जो लड़कपन की बात है कि सब विषयों पर सभी की एक ही राये होनो चाहिए। क्यों नहीं हो सकती? ध्येय एक है, क्यों नहीं हो सकती? क्या परिवार में ऐसा होता है? मैं उदाहरण देता हूं। हर परिवार में एक प्रसंग तो आता ही है। अब लड़की की शादी करनी है। परिवार के सभी लोगों की इच्छा रहती है कि लड़की को अच्छे परिवार में दिया जाए। उसका विवाह हो तो वैवाहिक जीवन सुखी होना चाहिए और विवाह का जो समारोह होगा, वह अच्छा होना चाहिए। चार लोगों को कहना चाहिए कि बड़ी अच्छी शादी की है तो विवाह का function (समारोह) भी अच्छा हो। सब की एक ही इच्छा होती है पर सब की एक

राये होती है क्या ? तो हमारे बुजुर्गों ने अनुभव के आधार पर कहा कि ऐसा नहीं है। जब लड़की के विवाह का प्रसंग आता है तो सब का ध्येय तो एक ही है, उसका वैवाहिक जीवन सुखी हो लेकिन हरेक का emphasis अलग-अलग होता है। तो उन्होंने कहा कि "कन्या वरयते रूप", जिस लड़की का विवाह है, उसका पहला आग्रह होता है कि लड़का देखने में सुन्दर (Handsome) है या नहीं। "कन्या वरयते रूपं माता वित्तम्......" माता पहले देखती है कि financial position कैसी है, आर्थिक स्थिति कैसी है (वर पक्ष की), हर दिन बर्तन मांजने का मौका तो मेरी बेटी को नहीं आयेगा। तो सम्पन्न परिवार में जानी चाहिए, यह आग्रह माता का रहता है। लेकिन पिता का आग्रह उससे अधिक रहता है। पिता सोचता है कि आर्थिक सम्पन्नता आज है। लेकिन किसी कारण से परिवार बरबाद हो गया तो वह लड़का इतनी योग्यता रखता है कि यदि बर्बाद भी हो गया, आर्थिक दृष्टि से तो भी Educational Qualification (शैक्षिक योग्यता) होने के कारण फिर से वह अपने पैरों पर खड़ा होकर सम्पन्न हो सके। ऐसी कुछ Educational Qualification उसकी है कि नहीं ? यह पिता सोचता है तो इसलिए कहा कि—कन्या वरेति रूपं माता वित्तम् पिता श्रुतं......। हरेक का emphasis अलग-अलग है। अब बाकी रिश्तेदार इतनी बारीकी में नहीं जाते। लेकिन परिवार का अभिमान है, हमारा भी खानदान है तो बाकी के लोगों का emphasis इतना ही रहता है कि हमारे बराबर का खानदान है कि नहीं ? Social Status (सामाजिक स्तर) में हमारे बराबर के हैं कि नहीं ? तो "बान्धबाः कुलमिच्छन्ति" कि कुल, खानदान हमारे बराबर की है या नहीं ? फिर after all

हम भी तो Sympathizers हैं लड़की के। हमारा interest क्या है? तो कहा—बान्धवा: कुलमिच्छन्ति, मिष्ठान्न मित्रे जना:। हमारा भी interest है लेकिन हमारा interest इन चीज़ों में नहीं। उस समय जलेबी वगैरा होगी, इसी के कारण हमारा interest है। ध्येय सब का एक है कि उसका वैवाहिक जीवन ठीक होना चाहिए, विवाह समारोह अच्छा होना चाहिए यही सब का ध्येय है लेकिन emphasis (आग्रह) अलग-अलग हो जाता है। अब ये अगर हमने नहीं समझ लिया तो कहेंगे कि साहब धड़े हो गये हैं, बड़े मतभेद खड़े हुए हैं।

अब परिवार के नाते पाण्डवों से अधिक सघन परिवार मिलना कठिन है। मतभेद नहीं हुए? द्रौपदी-वस्त्रहरण चल रहा था। युधिष्ठिर ने कहा कि धर्म के आदेश के अनुसार इस समय चुप रहना चाहिए, बर्दाश्त करना चाहिए। हमारे भीम दादा बर्दाश्त नहीं कर सके, गुस्सा हो गये और भीम दादा ने सहदेव को कहा कि सहदेव! ज़रा अग्नि ले आओ। मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता के हाथ जलाना चाहता हूं। अब इससे ज्यादा मतभेद क्या हो सकते हैं कि मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता के हाथ जलाना चाहता हूं। तो क्या दूसरे दिन इण्डियन एक्सप्रैस में आना था कि दो धड़े हो गये हैं सघन परिवार के? ऐसा नहीं होता। मनभेद नहीं हुआ, मतभेद हुआ। हरेक का स्वभाव होता है, प्रकृति होती है, mental background होती है जिसके कारण बहुत बार मतभेद हो जाते हैं। लेकिन सारा होते हुए भी परिवार का सघन रहना, आखिर तक एकात्मता परिवार की कायम रहे। तो ये जो constitution के आधार पर चलने वाली संस्थायें हैं, जहां पारिवारिक जीवन नहीं constitution dominate करती हैं,

उनका अनुभव लेकर यदि हम देखें, उनका Parameter लगाएं और फिर सोचें कि साहब! कोई मतभेद नहीं होने चाहिएं क्योंकि सब का ध्येय एक है तो सब का मत हरेक विषय पर एक होना चाहिए, ऐसा नहीं है।

परिवार में एकमत सभी विषयों पर नहीं रहता लेकिन concensus (एकमत) रहता है। यह संघ भी एक परिवार है। तो सब विषयों पर एक राये क्यों नहीं होगी? और यदि एक राये नहीं होती तो वे समझते हैं कि पारिवारिक भावना में कुछ कमी है। पारिवारिक भावना में कमी है, ऐसा नहीं है। संघ परिवार है, अलग-अलग क्षेत्रों में काम करने वाली अलग-अलग संस्थाय हैं। हर संस्था का अलग-अलग क्षेत्र है, उनकी अपनी एक प्रकृति है। हर क्षेत्र की प्रकृति के कारण, कुछ विशेषतायें निर्माण होती हैं, जिसको कहते हैं constant compulsions। हमारे आदर्श हैं हिन्दू आदर्श। किन्तु आज की constitution है Non-Hindu constitution माने सामाजिक रचना हो, राजनैतिक रचना हो, आर्थिक रचना हो, इसके विषय में हमारे आदर्श हैं—हिन्दू रचना। किन्तु आज वो हिन्दू रचना अस्तित्व में नहीं है। Non-Hindu रचना माने हमारी आज की संविधान (constitution), इस constitution के framework में रहते हुए माने Non-Hindu framework में रहते हुए हिन्दू आदर्शों को लेकर चलने वाले लोग संस्थायें चला रहे हैं, इसके कारण कई मजबूरियां खड़ी हो सकती हैं। कानून और संविधान को तोड़कर तो हम काम नहीं कर रहे। आजकल की परिस्थिति के framework में काम करना है। जो हिन्दू परिस्थिति है, उसका अभी तक निर्माण नहीं हुआ तो हिन्दू आदर्शों को लेकर

Non-Hindu constitution में काम करने के कारण कई constrants & compulsions निर्माण होते हैं। ऐसी परिस्थिति में विभिन्न संस्थायें काम कर रही हैं। और फिर हरेक संस्था का अपना-अपना क्षेत्र के अनुसार एक दृष्टिकोण होता है।

पारिवारिक बैठकें

जैसे शुरू-शुरू में तो ऐसा था कि संस्थायें ज्यादा नहीं थीं। परमपूजनीय डाक्टर जी के जीवन काल में सारी कल्पना थी। मैंने कहा कि जितना हो रहा है वह सारा डाक्टर जी ने conceive किया था, उसी का progressive unfoldment है, नया कुछ नहीं। जो उन्होंने 1925 में विजयादशमी के पहले सोचा होगा, उसी का यह progressive unfoldment है। लेकिन उनके जीवनकाल में कोई ऐसी संस्थायें निर्माण नहीं हुई थीं, धीरे-धीरे संस्थायें निर्माण हुईं। पहले कोई समाचारपत्र, फिर विद्यार्थी परिषद्, बाद में जनसंघ, फिर भारतीय मज़दूर संघ कई संस्थायें निर्माण हुईं। अब जैसे-जैसे संस्थायें निर्माण होती गईं, वैसे-वैसे इसके procedures भी धीरे-धीरे व्यावहारिक ढंग से निर्माण हुए। ज्यादातर यही पर्याप्त माना गया कि जो संघ के स्वयंसेवक हैं, वे अलग-अलग संस्थाओं के प्रमुखों के साथ स्थानीय स्तर पर बातचीत करते हैं। यह अलग-अलग संस्थायें भी धीरे-धीरे निर्माण हुईं। फिर यह समय आया कि संस्थाओं का प्रपंच बहुत बढ़ गया है। केवल थोड़े लोग संघ के साथ विचार-विमर्श करते रहें, यह ठीक नहीं होगा। सभी ने अपनी बात रखनी है शायद ज्यादा उपयुक्त रहे, इसलिए बड़ी बैठकें शुरू हुईं जिसे हम विभिन्न क्षेत्रों की बैठक कहते हैं। हर बैठक में इतना ही होता है कि अलग-अलग संस्था चलाने वाले स्वयंसेवक

बैठक में आते हैं। जो साप्ताहिक शाखा के रूप में, एकत्रीकरण होता हैं। फिर बताया जाता है कि हमारी संस्था में विशेष बात क्या हुई। विशेष कार्यक्रम आगे क्या हैं? थोड़ा-बहुत विचार-विमर्श होता है। बैठक में बातचीत होती है या साप्ताहिक शाखा में बात होती है। अपने यहां हरेक चीज़ धीरे-धीरे होती है, इसलिए मज़बूती से होती है। बहुत जल्दबाजी की जो चीज़ होती है वह चलती नहीं। अब इसके होते-होते धीरे-धीरे मोड़ वाली स्थिति वैसे ही निर्माण होती है जैसे परिवार में। लेकिन उसमें समझदारी का स्तर बढ़ना, यह बहुत ज़रूरी बात है। परिवार में भी, संघ परिवार में, शाखा में। जहां अपना व्यक्तिगत परिवार हो, वहां भी परिवार है। शाखा हो, वहां भी परिवार है। यह सब जो मिलकर हम यहां बैठें हैं, यह संघ परिवार है। अब समझदारी का स्तर जैसे-जैसे ऊंचा होगा, परिवार ढंग से चलेगा। समझदारी का स्तर छोटा है, परिवार को उसी ढंग से दिक्कतें आयेंगी। हर विषय पर सभी को एकमत होना चाहिए, यह लड़कपन वाली बात है। लेकिन सभी का एक ध्येय है, सभी एक-दूसरे से प्यार करते हैं, एक-दूसरे पर पूरा विश्वास है, विचार-विमर्श होता है, concensus से होता है, एकमत से होता है तो यह परिवार है।

अनुकूलतम योजना बनायें

परिवार का मतलब यह नहीं है कि सब अंडे एक ही बास्केट में डालें। कभी-कभी ये आता हैं कि हर बात में परिवार की पूरी ताकत लगाओ। पूरी ताकत लगाते-लगाते श।खा रहे न रहे, इधर ध्यान नहीं है लेकिन पूरी ताकत हर बात पर लगाना। किसान संघ का कोई कार्यक्रम आए तो वह कहेगा कि साहब पूरी

संघ की ताकत इधर लगाओ। मजदूर संघ का कोई कार्यक्रम आया तो वह कहेगा कि पूरी ताकत यहां लगाओ। तो पूरी ताकत लगाने वाले का capital (पूंजी) भी कुछ बचना चाहिए, यह विचार इसमें नहीं आता। तो ये बात है कि अंग्रेज़ी में एक कहावत है कि You should not put all your eggs into one basket (सारे अंडे एक ही टोकरी में नहीं डालना चाहिए) क्योंकि वो बास्केट यदि फूट जाता है तो सारे अंडे फूट जायेंगे। बड़े-बड़े सेठ-साहुकारों को हमने देखा है कि वे जब पैसे लेकर जाते हैं तो एक जेब में सारे पैसे नहीं रखते। कुछ इस जेब में रखते हैं, कुछ उस जेब में रखते हैं, कुछ ऐसे पैंट के पीछे रख देते हैं। माने किसी ने जेबकट भी किया तो कुछ न कुछ पैसा बच जायेगा, सारा पैसा नहीं चला जायेगा। एक आदमी 20 मील दौड़ता है, दूसरा आदमी भी 20 मील running करता हैं, अब दोनों की ताकत एक होनी चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि कोई ऐसा करे कि दोनों 20 मील running करते हैं तो दोनों को इकट्ठा लाया जाये और उनको खींच करके एक का बायां पैर और दूसरे का दायां पैर बांध लिया जाए और फिर उनको Three legged race के समान दौड़ाया जाए। यह उचित नहीं। समझदारी का स्तर बढ़ाना ही सबसे महत्त्वपूर्ण बात है।

जैसे एक फैक्टरी चलती है। उसके अलग-अलग विभाग व उन विभागों के अलग-अलग मैनेजर होते हैं। सभी के सामने फैक्टरी की समृद्धि का ध्येय रहता है। ये मैनेजर अपने-अपने विभाग की Sub optimam plan (अनुकूलतम योजना) बना कर जनरल मैनेजर के सामने रखते हैं। परन्तु फैक्टरी के हित को ध्यान में रखते हुए जनरल मैनेजर, सभी की बात सुनकर अपना निर्णय देता है जिसे optimam decision (अनुकूलतम

निर्णय) कहते हैं। इसके अनुसार विभिन्न बिभाग अपनी-अपनी योजनाओं में परिवर्तन भी करते हैं। हरेक योजना के Losses & gains (हानि व लाभ) सभी के सामने रखने पर कठिनाई आती है।

हरेक बैठक में कोई न कोई प्रभावशाली व्यक्ति रहता है। व्यक्तिगत likes & dislikes के आधार पर निर्णय लेना योग्य नहीं।

संघ याने सम्पूर्ण समाज। परिवार संकल्पना ठीक ढंग से समझने पर ही कार्य ठीक चल सकता है !

अन्य प्रकाशन

1.	बोध कथाएँ भाग-1	3-00
2.	बोध कथाएँ भाग-2	8-00
3.	प्रेरणा	3-00
4.	भारत गरिम प्रकाश	8-00
	(सजिल्द)	12-00
5.	जूझता पंजाब	8-00
6.	देश जगावां (हिन्दी)	5-00
7.	देश जगावां (पंजाबी)	5-00
8.	हिन्दू मानसिकता — मा० [illegible] ...	3-50
9.	पश्चिम की शोषणात्मक अर्थव्यवस्था और स्वदेशी	4-00

मिलने का पता :—

अपना साहित्य

पीली कोठी, गोपाल नगर,
जालन्धर।